❀ ओ३म् ❀

उपनिषदीय

रायण-तत्त्वकथा

[उपनिषदों के पांच आख्यानों का वैदिक सिद्धान्तानुसार मौलिक स्वतंत्र विनियोग]

प्रणेता—

रामनारायण माथुर 'ओ३म्प्रेमी'

(अधिवक्ता), शाजापुर (म. प्र.)

भूमिका लेखक—

डॉ. चिंतामणि उपाध्याय

असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

माधव महाविद्यालय

उज्जैन (म. प्र.)

प्रथम संस्करण
१९७२ ई.

मूल्य।
१ रु. ५० पैसे

* ओ३म् *

हिन्दी पद्यमयी–

उपनिषदीय

सत्यनारायण-तत्त्वकथा

[उपनिषदों के पांच आख्यानों का वैदिक सिद्धान्तानुसार मौलिक स्वतंत्र विनियोग]

●

प्रणेता—

रामनारायण माथुर 'ओ३म्प्रेमी'

(अधिवक्ता), शाजापुर (म. प्र.)

●

भूमिका लेखक—

डॉ. चिंतामणि उपाध्याय

असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

माधव महाविद्यालय

उज्जैन (म. प्र.)

●

प्रथम संस्करण
१९७२ ई.

मूल्य :
१ रु. ५० पैसे

ओ३म्

सादर-समर्पण

जिनकी आदेशात्मिका पुण्यमयी प्रेरणा से इस 'कथा' का आश्चर्यजनक प्रकारेण प्रणयन संभव हुआ है, तथा जो कथा-प्रणेता के पूज्य पिताजी (स्व० स्वामी सूर्यानन्दजी सरस्वती, आर्य्य-संन्यासी) के आजीवन घनिष्ट मित्र बने रहने के कारण ['ओ३म्प्रेमी' पर] सदैव सगे पितृव्यतुल्य वात्सल्य रखते रहे, उन्हीं श्रद्धास्पद बहुश्रुत मनीषि विद्वद्वर (स्वर्गीय) मास्टर सुखरामजी गुप्त महोदय की स्मृति को यह तुच्छ-सी कृति सविनय समर्पित है।

विनीत समर्थक—
"ओ३म् प्रेमी" (तृतीयाश्रमी)

卐

ऋचं वाचं प्रपद्ये

(भूमिका)

भारत की परम्परा एवं संस्कृति में सत्य की बड़ी महिमा गायी गई है। वैदिकों की 'ऋतं सत्यं च' की भावना और आज के सामाजिकों की सत्योपासना में वड़ा अन्तर है। विज्ञान का सत्य, धर्म और अध्यात्म का सत्य तथा नीति और व्यवहार के सत्य की अलग-अलग स्थितियां हैं।

धर्मराज युधिष्ठिर बडे सत्यवादी माने गये हैं, किंतु 'नरों वा कुंजरों वा' के संकोच में उनकी संशय-वृत्ति किस-किस बात की द्योतक है ? जब धर्म ही सत्य है और सत्य ही धर्म है तब समाज-धर्म और व्यक्ति धर्म का सत्य ही अलग होता है। युधिष्ठिर की सत्य-निष्ठा स्वार्थी पंडितों की उस नीति अथवा नीति-शास्त्र का पोषण करती है, जो समाज-बाह्य नहीं है।

उपनिषदों में सत्य-चिंतन की स्थिति एकदम भिन्न है। वहां संशय और उलझन की बात ही दिमाग में नहीं आती। मन वाणी और कर्म के सत्य एक रूप हैं।' मा ब्रूयात सत्यं अप्रियम् जैसे नीति-शास्त्र के निर्देश से उपनिषद् का ऋषि स्खलित नहीं होता। उसका संकल्प दृढ़ होता है। 'सन्मार्गे प्रज्ञा रक्षणीया' में अडिग विश्वास को लेकर चलता है। यह सत् या सन्मार्ग क्या है ? ब्रह्मचिंतन। सत्य ही ब्रह्म है और केन उपनिषद् के अनुसार 'सत्यमायतनम्' सत्य ही

उपासना का घर है। 'सत्यमेव जयति नानृतम्' का उद्घोष भी उपनिषद् (मुंडक) की आस्थामूलक वाणी है। किन्तु मनुष्य की यह आस्था हर युग में छली गई है।

वेद और उपनिषद साहित्य के मर्मज्ञ श्री ओ३म् प्रेमीजी ने उपनिषदों के नारद सनत्कुमार, सत्यकाम-जाबालि, जानश्रुति पौत्रायण-रैक्व उषस्ति चाक्रायण एवं पिप्पलाद के आख्यानों को लेकर उपनिषदीय सत्यनारायण तत्व कथा का सृजन किया है किंतु सत्यनारायण की कथा की भावना ही स्पष्टतः यह प्रकट करती है कि पौराणिकों ने ब्रह्म-चिंतन के गहन तत्वों को आख्यान या कथा के माध्यम से सर्व-साधारण को समझाने का प्रयास किया था, वही उद्देश्य कवि श्री ओऽम् प्रेमी का होना चाहिये। कवि ने वैदिकमंत्रों एवं उपनिषदीय संस्कृत भाषा का इस ग्रंथ में बहुलता के साथ उपयोग किया है। किन्तु छंदों में उन तत्वों की विवेचना एवं अनुवाद से विषयगत जटिलता सरल हो गई है।

वैदिक मंत्रों एवं पूजोपचार के संस्कृत श्लोकों का अर्थ न समझकर उसका उच्चारण करने वाले किसी पौराणिक की अन्ध-श्रद्धा से विलग होकर यदि तत्व कथा का श्रवण, अध्ययन या परायण किया गया तो निश्चय ही तत्वज्ञान के साथ आत्म-शान्ति प्राप्त होगी, ऐसी मेरी धारणा है।

इस कृति के लिये ओऽम् प्रेमीजी बधाई एवं वन्दना के पात्र हैं।

महावीर जयन्ति

डा. चिन्तामणि उपाध्याय,
असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
माधव कॉलेज, उज्जैन (म. प्र.)

——
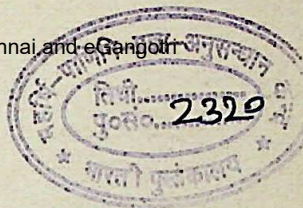
शुभ कामना

समाज में नैतिक पवित्रता बनाये रखने के लिये कथा साहित्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य स्वभाव से कथा सुनता और सुनाता रहा।

हमारे वैदिक ऋषियों ने भी कथाशैली के माध्यम से अनेक जटिल सिद्धान्तों को सभी उपनिषदों में सरलतापूर्ण ढंग से समझाने में सफलता प्राप्त की। तभी से कथा सुनने-सुनाने की प्रथा समाज में प्रचलित है।

पौराणिक काल में कथा की 'मूलकथा' उपेक्षित हो गई और 'कथा का महात्म्य' ही सुनाया जाने लगा। इससे समाज के मन पर कुसंस्कार अपना प्रभाव जमाने लगे।

'सत्यनारायण की कथा' हिन्दू समाज में विशेष रूप से प्रचलित है। इसके पांचों अध्यायों में केवल माहात्म्य ही निरूपित किया गया है, इस कारण इस कथा से उद्देश्यपूर्ण नहीं होता।

श्री रामनारायणजी माथुर 'ओ३म्प्रेमी' ने इस ओर लेखनी चलाकर कथा के महत्व तथा वैदिक सिद्धांतों के आधार पर उसका निरुपण किया है। इसके प्रचलन से देश और समाज की सेवा अधिक संभावित है।

उनके इस सत्प्रयास के लिये मेरी शुभकामनाएं हैं।

मनुदेव 'अभय'

॥ ओ३म् ॥

प्रकाशकीय वक्तव्य

सच्चा ओ३म् प्रेम तथा पक्की सत्संग निष्ठा ही जिसके मुख्य ध्येय हैं और शुल्कादि का जिसमें किसी प्रकार से कोई बन्धन नहीं–ऐसे ओ३म् प्रेमी समाज के ही एक अत्यन्त श्रद्धालु एवं भावुक सदस्य श्री गुरुंग महोदय ने इस "सत्यनारायण तत्व कथा" का मुद्रण व्यय सहर्ष वहन किया है, इसके लिये प्रकाशक के नाते यह समाज उनका कृतज्ञ है। डॉ चिन्तामणि उपाध्याय महोदय ने भूमिका लिख देने की कृपा की है तदर्थ उनको भी धन्यवाद। इसी प्रकार श्री पं. मनुदेवजी 'अभय' विद्यावाचस्पति, संपादन कला विशारद ने जो सहयोग दिया है उसकी जितनी प्रशंसा की जावे उतनी ही कम रहेगी, कुछ शब्द अपनी ओर से लिखकर उन्होंने विशेष अनुग्रह किया है जिसके लिये यह समाज उनका अतिशय आभारी है। ९४ वर्ष की अवस्था में श्री पं. रामनारायणजी आर्य्य पहलवान (इन्दौर) ने उत्साहवर्द्धक आशीर्वाद प्रदान किया तथा पं. बसन्तीलालजी शर्मा वैद्यराज (उज्जैन) ने प्रोत्साहन दिया–इसके लिए इन दोनों के हम (ओ३म् प्रेमी समाज के सदस्या–सदस्यगण) आभारी हैं। किन्हीं कारणों से (त्वरा में) कई अशुद्धियां रह गई हैं जिसका हमें खेद है, कृपया शुद्धि–पत्रक के अनुसार सुधार कर लें।

विनम्र–

ओ३म् प्रेमी समाज,

चौधरी भवन, शाजापुर

सु-महत्वमयी सं-सूचना

इस "तत्वकथा" का मुद्रण व्यय 'ओ३म्' प्रेमी' के एक नेपाली भक्त श्री डी. बी गुरुंग महोदय ने आत्मप्रेरणा से भेंट किया है। उक्त महोदय केवल ५–६ मास तक ही 'ओ३म् प्रेमी' का सत्संग लाभ उठा सके परन्तु इतने से ही समय में उनमें महान् शुभ परिवर्तन हो गया। मद्यमांस सेवनादि दोष सदैव के लिये त्याग कर वे एक 'वैदिकधर्म के कर्तव्य परायण सेवक बन गये हैं। नियमित रूपेण दैनिक संध्या अग्निहोत्र एवं आर्षग्रंथों का स्वाध्याय (हिन्दी बहुत कम जानते हुए भी) सोत्साह करते हैं। [उनके परिजन भी उन्हीं का अनुसरण कर रहे हैं-विशेषतया उनकी पतिपरायण धर्मपत्नी।] मिलिटरी सर्विस में सूबेदार के उच्चपद पर कार्यरत रहते हुए भी वे निरन्तर धर्मशील हैं यह अत्यन्त गौरव की बात है यद्यपि श्री गुरुंग बड़ी ही श्रद्धा से 'ओ३म्प्रेमी' को अपना गुरु मानते और कहते हैं तथापि इस विकास का अधिकांश श्रेय उन्हीं को देते हुए ओ३म्प्रेमी ने अपनी रची हुई एक लम्बी कविता में से निम्नलिखित पंक्तियां इस विषय में कई बार कही हैं कि "सत्यसंग-सूर्य का है प्रभाव, पर तुम भी हीरो हो न। कोयला रहे निष्प्रभ सदैव, रवि कितना ही चमके क्यों हैं॥" सत्यनारायण ओंकारदेव की कृपा से श्री गुरुंग का वैदिकधर्म कोमल बना न रहे बल्कि निरन्तर बढ़ता ही जावे-एवमस्तु।

ओ३म्

इस "तत्वकथा" की

विषय सूची

(पृष्ठ)

॥ ओ३म् ॥

(अपने ही रचे हुए एक गायन की कतिपय पंक्तियाँ "ओ३म् प्रेमी" यहाँ सोत्साह समुद्धृत कर रहा है, कृपया ध्यान दें।)

["परमेश्वर को धन्यवाद"]

'आज उस जगदीश को हम
प्रेम से दें धन्यवाद।
हैं सनातन से जिसे देते
सुजन सब धन्यवाद॥
सब सुखद संयोग तो
सचमुच उसी की देन हैं।
कम रहेंगे, दें करोड़ों भी
अगर हम धन्यवाद॥'

[पूरा गायन पढ़ने या सुनने के अभिलाषी नर-नारी को चाहिये कि वे हमारे काव्य संग्रह के अवलोकन का कष्ट करें। विस्तार भीति से यहाँ एक ही 'पद' (अन्तरा) हमने उद्धृत किया है। ("ओ३म् प्रेमी")]

॥ 'ओ३म् ॥

सत्यनारायण विषयक थोड़े-से विचार

श्री सत्यनारायण भगवान का मूल नाम "ओ३म्" है, अन्य तो समस्त नाम गुण, कर्म, स्वभावानुसार हैं और यतः उनके गुणादि अनन्त हैं। अतः नामों का भी अन्त कहाँ? परन्तु 'ओ३म् प्रेमी' को यहाँ 'ओ३म्" नाम की प्रामाणिकता एवं सर्वमान्यता पर कुछ विशिष्ट विचार, अत्यन्त संक्षेप से ही, प्रस्तुत करने इष्ट हैं जो इस प्रकार किये जाते हैं:- (१) वेदों में 'ओ३म् खम्ब्रह्म' 'ओ३म् प्रतिष्ठ' आदि के द्वारा ओ३म् का स्पष्टतः प्रतिपादन है। (उपनिषदों में, 'तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओमित्येतद्' आदि वचनों से वही वर्णित है, (इस 'कथा' में यथास्थान उन्हें उद्धृत किया गया है) (३) श्रीमद्भगवद्गीता में 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' तथा 'ओ३म् तत्सदिति निर्देशो' आदि वाक्य आये हैं (४) ईश्वर को न मानने वाले बौद्धों के मुख्य मन्त्र 'ओ३मूमणिपद्महुम' के आरंभ में 'ओ३म्' है। (५) ऐसे ही जैनियों के नवक्कार मंत्रों के प्रारंभ में 'ओ३म्' है यथा' ओ३म्' नमो आर्याणम्' इत्यादि। (६) मुसल्मान भाई चाहे न जानते हों परन्तु उनके यहाँ भी 'अलिफ़, लाम, मीम, का महत्व है जिसे 'उम्' पढ़ा व बोला जाता है, यह "ओ३म्" का ही रूप है। (पिताजी स्व. स्वामी सूर्यानन्दजी महाराज ने स्व-रचित "ओंकार आराधना भजनावली" की भूमिका में इस पर सविस्तार प्रकाश डाला है) वैसे 'आमीन' भी 'ओमन्' का ही अपभ्रंश है। (७) इंजील का 'एमन' भी ओमन्' का ही विगड़ा रूप है। (८) अंग्रेजी में 'सर्वव्यापक' के लिये 'ओमनी प्रेजेन्ट' तथा 'सर्वशक्तिमान्' के लिये 'ओम-नीपोटेंट' शब्द हैं, इनके अथ में भी प्रत्यक्षतः 'ओ३म्' है अस्तु।

[इति विशिष्ट विचारः]

॥ ओ३म् ॥

प्रणेता का प्रारम्भिक-प्रवेदन

"नमस्ते भगवन् अस्तु यतः स्वः समीहसे" (वेद वचन)

सर्वप्रथम उस परमप्रिय भगवान् ओ३म्देव को हार्दिक भक्ति भावना पूर्वक 'नमस्ते' निवेदित है जिसके 'सत्य' और 'नारायण' भी (अनन्त नामों में से) दो उत्तम नाम हैं। तदनन्तर उन अज्ञात-नामा ऋषियों को शिरसा वन्दन है जिन्होंने उपनिषदों का श्रेयस्कर महान् ज्ञानकोष हमें प्रदान किया। फिर उसी पुण्य-परम्परा में वर्तमान युग के अनुपम वेदोद्धारक महर्षि दयानन्दजी सरस्वती को भी बारम्बार नमोनिवेदन है जिनकी महती कृतियों से आध्यात्मिक श्रेष्ठता की दिशा में सत्पथ पर बढ़ सकने की क्षमता श्रद्धालु मानवों (महिला पुरुषों) को सहज ही प्राप्त हो जाती है; मैं भी उन भाग्यशाली मनुजों का अपवाद नहीं हूँ अस्तु।

अब संक्षेपतः इस "सत्यनारायण तत्व कथा" के प्रणयन विषयक कतिपय आवश्यक बातें अंकित की जाती हैं:-

(१) [पुण्यमयीप्रेरणा]— पूज्यपाद पिताश्री स्वर्गीय स्वामी सूर्यानन्दजी सरस्वती आर्यसंन्यासी (पूर्वनाम, सूर्यप्रसाद जी चौधरी) की प्रबल इच्छा थी कि पौराणिक के स्थान पर वैदिक "सत्यनारायण-कथा' प्रचलित हो सके, किन्तु खेद है कि प्रवचनादि अन्याय व्यस्ततावशात् वे यह कार्य सम्पन्न नहीं कर पाये। उन्हीं के घनिष्ट सहयोगी मित्र श्रीयुत मास्टर सुखराम जी गुप्त ने उक्त स्वामीजी के निधनोंपरान्त अपने एक नवनिर्मित गृह में प्रवेश तथा अपने दो पौत्रों के उपनयन संस्कार के उपलक्ष में आर्ष सत्यनारायण कथा करानी चाही। इसकेलिये मुझे

आदेश दिया कि १५-२० दिन के भीतर ही ऐसी कथा बनाकर दो जो रोचक, वैदिक एवं प्रामाणिक हो। पहले तो मैंने यह कह-कर साफ़ इन्कार कर दिया कि चारों वेदों के पद्यानुवाद का भारी संकल्प पूर्ण करना है, इत्यादि। (असल बात यह थी कि मुझे आत्महीनता की अनुभूति हो रही थी।) परन्तु दो एक दिनों के बाद ही ब्राह्ममुहूर्त में दैनिक सन्ध्योपासन करते समय सहसा ओश्म्-प्रेरणा भीतर ही भीतर यों हुई * कि मानो निषेध करके मैंने बड़ा अपराध किया हो तथा सूर्योदय होते ही मैं श्रद्धेय सुखराम जी की सेवा में उपस्थित हो गया। उन्हें आन्तरिक प्रेरणा प्राप्ति की उक्त घटना सुनाकर उनका आदेश मानने के अपने निश्चय से उन्हें सूचित कर दिया।

कोई माने या न माने, फिर भी यह शत प्रतिशत सत्य है कि यन्त्रचालितवत् मैं उसीदिन से इस अनूठी कथा के संकलन, पद्यानुवाद प्रकृति के गुरुतर कार्य में जुट गया और १५-१६ दिनों में ही इसे सम्पन्न कर डाला।

(२) [प्रगति का प्रस्तार]—पता नहीं, कौनसा अजीब मधुर नशा चढ़ गया था जिसके प्रभाव में रहकर मैं रुग्ण काया तथा विषम आर्थिकावस्था के होते हुए भी इस महान् कार्य में प्रति-दिन ७-७ बल्कि ८-८ घण्टे परिश्रम कर सका, विशेष यह कि

---

* "आत्मा के भीतर से अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है; वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु अन्तर्यामी परमात्मा की ओर से है" (महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत 'सत्यार्थ प्रकाश' के सप्तम समुल्लास के प्रत्यक्षप्रकरण से ग्रहित भाव; शब्द हमारे हैं।) ["ओ. प्रे.]

यद्यपि इन दिनों में धनदा वृत्ति (वकालत का धन्दा) संबंधिनी व्यस्तता अपेक्षाकृत अधिक ही रही। तथापि कचहरी में भी कभी-अवकाश निकालकर यही कार्य मैं करता रहा। उन्हीं दिनों एक साहित्य मर्मज्ञ अधिवक्ता बन्धु ने तो यहाँ तक कहा कि "आपकी 'कथा' बड़ी भयंकर त्वरा से प्रगति कर रही है! यह पद्य भी आप यों कैसे लिख पाते हैं मानों कुछ रटा हुआ-सा ही कागज पर अंकित हो रहा हो ?" पर मैं क्या उत्तर देता ? वस्तुतः मैं स्वयमेव चकित हो रहा था—

और मेरे आश्चर्य की तब तो जैसे कोई सीमा ही नहीं रही जब मैंने देखा कि 'कथा' को 'बाँचने' का दिन आ चुका, समय भी समीप था किन्तु मैं आधा घण्टा पूर्वतक इस कथा की रचना ही कर रहा था। फिर भी, निश्चित समय पर कैसे मैं मास्टर सुखराम जी तथा उनके निमंत्रित श्रोता नारि नरों के समक्ष कथा-वाचक के विरल रूप में उपस्थित हो गया और किस तरह (वा क्योंकर) पूरे ३ घण्टे तक यह कथा बाँची। इस विषय में बाद को जो कुछ भी मुझ से मेरे कवि ने कहलवाया, वह अविकल-रूपेण स्वकविता-संग्रह में से उद्धृत करता हूँ:—❀

'कथावाचकों की श्रेणी में सहसा निज का नाम लिखाया।
अरे, ओ३म्प्रेमी को देखो, इसने कैसा काम उठाया !!
रखा उपनिषद् का पावन आधार, 'कथा' यों आर्ष बनाई।
चुने पाँच आख्यान कि जिनमें निज कविता की तान मिलाई।।
किया गेय पद्यानुवाद भी, जो श्रोतागण के मन भाया ।।१।।

❀ तीन घण्टे के बजाय २ या २॥ घण्टे में समाप्य बनाने के हेतु अब इसमें सुपर्याप्त परिवर्तन कर दिया गया है ताकि वक्ता श्रोता दोनों को ही अधिक सुविधा हो। ("ओ. प्रे.")

स्वयं संकलित और अनूदित 'कथा' इसी ने गाकर बांची।
इस विधि से अपनी क्षमता भी अनायास ही इसने जाँची ॥
विस्मय से यह स्वयं देखता-'सफल भला कैसे हो पाया'। २॥
काव्यकला, गायनविद्या, दोनों में से कोई कब जानी ?
फिर कैसे दुस्साहस जैसाकर यह पग धरने की ठानी ॥
क्या इसके चैतन्यदेव ने ही इसका उत्साह बढ़ाया ? ॥३।
नहीं नहीं, यह जिसका प्रेमी उसी ओ३म् की महिमा इसमें।
श्रेय कार्य में प्रोत्साहन दे सकने की बस गरिमा उसमें ॥
भीतर ही भीतर अनजाने अद्भुत प्रेरक शंख बजाया ॥४॥
सुनो, 'ओ३म् प्रेमी' कहता है--'रहा यन्त्र चालित-सा मैं तो।
आगे बढ़ा रहे थे वे ही, अन्तर्यामी प्रियतम हैं जो ॥
मैं आनन्द परोसूँ, यह कर्तव्य उन्हीं ने मुझे सुझाया' ॥५॥
अहा, कथन की स्वाभाविकता बरबस ही विश्वास दिलाती-
इसे ओ३म् ने ही सुप्रेरणा की अवश्य सौंपी है थाती ॥
वह लो, कहते कहते गद्गद् हुआ, कण्ठ भी तो भर आया ॥
इसने कैसा काम उठाया' ॥ ॥६॥

(३) [प्रभूत प्रोत्साहन]— यह 'कथा' जिसदिन (१०-७-६२ ई. को) सबसे पहले 'बाँची' गई उस समय शतशः नारियों नरों के मध्य मेरे शिक्षक एवं पूज्य पिताजी के अनुजवत् कृपा पात्र तथा महाकवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के बाल-सहचर आदरणीय श्रीमान् रामजी बलवन्त शितूत मास्टर सा० भी अस्वस्थता के बावजूद पधारे और परिसमाप्तिपर्यन्त मनोयोगपूर्वक सुनते रहकर अन्त में उन्होंने आशिर्वादयुता मंगलकामना प्रकट करने की कृपा भी की तथा इस 'कथा' को बहुत सराहा, जिससे मैं अतिशय प्रोत्साहित हुआ। अन्य भी अनेक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध महानुभावों एवं समवयस्क साहित्यप्रेमियों ने सच्चेहृदय से

प्रशंसा करके मेरा उत्साहवर्द्धन किया, उन समस्त का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

किन्तु जिसे मैं 'प्रभूत प्रोत्साहन' पुकारता हूँ वह तो ऐसे महानुभाव से (जिनका नाम जानबूझकर किन्हीं कारणों से नहीं लिख रहा हूँ) अभी-अभी कुछ दिनों पूर्व प्राप्त हुआ है। वे स्वयं एक अच्छे कथावाचक हैं बल्कि यही उनका एक मात्र पैतृक व्यवसाय है। पूज्य पिताजी के अंतिम समय तक स्नेहपात्र रहने का भी उन्हें सौभाग्य मिला है इस नाते मेरे मन में उनके प्रति सुपर्याप्त आदर भाव है। उन्होंने यह पूरी 'कथा' बड़े ध्यानपूर्वक एकान्त में मुझसे सुन चुकने पर बहुत जोर देकर कहा कि 'इसे शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित कराओ, मैं स्वयं इसका प्रचार करूंगा क्योंकि हम लोग तो केवल व्रतकथा करते हैं जो वास्तव में कथा कराने और न कराने वालों की ही कथा है परन्तु तुम्हारी यह कथा सचमुच 'सत्यनारायण तत्त्व कथा' है जो उपनिषदों पर आधारित है, इसलिए इसको जितना प्रचार विस्तार मिल सके उतना शुभ ही होगा।" उन्होंने और भी अनेकों प्रशंसा-परक बातें मेरे और इस 'तत्त्वकथा' के बारे में कहीं जिनका यहाँ उल्लेख करना न तो उचित है, न वांछनीय ही; किन्तु इतना अवश्य कह देना ठीक समझता हूँ कि मुझमें जो थोड़ी बहुत आत्महीनता की भावना अवशिष्ट थी वह भी इस प्रभूत प्रोत्साहन से समाप्त हो गई, अतएव उन्हें मुहुर्मुहु धन्यवाद है।

(४) [प्रयोजन–प्रकरण] अभी इस 'कथा' की अवतारणा का विलक्षण प्रकार ही यत्किंचत् वर्णित् हुआ है किन्तु प्रयोजन प्रकरण पर विचार शेष है जो थोड़े में प्रकट करना यहां इष्ट है:—

'हिन्दु' नामधारी (विकृत आर्य) जन जन के मन में सत्य नारायण की प्रचलित कथा के प्रति भारी अन्ध श्रद्धा पाई जाती है और (वृद्धा, प्रौढ़ा हिन्दु नारियों के अतिरिक्त) जितने भी श्रोता महिला पुरुष उनमें होते हैं वे अधिकांशतः 'प्रसादिये भगत' कहे जा सकते हैं बल्कि बहुत से तो पांचवे अध्याय में ही पहुँचते पाये जाते हैं। सच पूछो तो, कथा कराने वाले सद्गृहस्थ से संपर्क होने के कारण ही लोग वहां जाते हैं न कि कथा से कुछ 'प्राप्त' करने के लिये। वैसे भी, (उपर्युक्त कथावाचकजी के अनुसार) 'कथा कराने या न कराने वालों की ही कथा' सुनाई जाती है, तत्व के नाम पर श्रोता नारिनर कदाचित् ही कुछ पाते हों। इधर इस कथा में तो नामानुरूप सत्यनारायण का उपनिषद् मूलक तत्व ही कथन किया गया है और पद्यपरिणति द्वारा यह कठिन आध्यात्मिक विषय, आख्यानों के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कथाविषयक गेय पद्य के अतिरिक्त कुछ वेदमन्त्रों के (मेरे किये हुए) पद्यानुवाद एवं ४-६ अध्यात्म-परक गायन भी यथास्थान रख दिये गये हैं—अस्तु।

इस प्रणयन का एकमात्र प्रयोजन यह है कि लोगों की श्रद्धा को अन्धता से परे करके ज्ञान की आँखों वाली सुदृष्टिवती बनाया जाय, उनमें वास्तविक सत्यनारायण परम प्रभु ओ३म् भगवान् के प्रति सच्ची आस्था जागृत की जाय और उनकी आध्यात्मिक रुचि को शुचितामयी सही दिशा में मोड़कर पद्यादि द्वारा भगवद्भक्ति का अमृतोपम रस उन्हें पिलाया जा सके।

इस प्रयोजन की सम्पूर्ति में यह प्रयत्न कहां तक सहायक और संसाधक बनेगा, इसका उत्तर तो भविष्य में ही मिलेगा परन्तु मैं इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि आगे जो भी कोई इससे अच्छा प्रयास किसी महोदया वा महोदय द्वारा किया

जावे तो मुझे हर्ष ही होगा। यह निश्चित है कि वैसे किसी आगामी पद्यमय प्रयत्न की 'अग्रजा' तो यह "तत्वकथा" रहेगी ही, मुझे इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है।

इसमें यदि कोई बड़ी त्रुटि दिखाई दे तो सद्भावनापूर्वक मुझे सूचना देने की कृपा करें ताकि आगामी संस्करण में यथोचित सुधार किया जा सके।

विस्तार भय से यह प्रवेदन यहीं समाप्त करता हूँ इच्छा तो बहुत कुछ कहने (यानी लिखने) की थी परन्तु वैसा करना अनुचित होगा अतएव इत्यलम्।

विनम्रः—
"ओ३म् प्रेमी (तृतीया श्रमी)

ओ३म्

(संकल्प इत्यादिक)

(कथा से पूर्व यजमान से कराने योग्य कृत्य)

१. आचमन—ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ (यजुर्वेद अ० ३६ मं० १२) (इससे ३ आचमन विधिवत् करावे)।

२. इन्द्रिय स्पर्शः—"ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः। ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओ३म् नाभिः। ओ३म् हृदयम्। ओ३म् कण्ठे। ओ३म् शिरः। ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्। ओ३म् करतलकर पृष्ठे"। (महर्षि दयानंद कृत 'पंचमहायज्ञ विधि' के अनुसार इन से सम्बद्ध इन्द्रियों का स्पर्श करने का आदेश यजमान को देवे)।

३. नमस्कार—"ओ३म् नमस्ते ऽस्तु विद्युते नमस्ते स्तन यित्नवे। नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥" "ओ३म् नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे। अन्यां ऽँ स्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्य ऽँ शिवो भव ॥"

ओ३म् नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देवकृष्टयः। अमैरमित्र मर्दय ॥" ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥" "ओ३म् यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसो ऽभवन्। दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥" "ओ३म् यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्ष-मुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥" "ओ३म् यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥" "ओ३म् यः श्रमा-

त्तपसो जातो लोकान्त्सर्वान् समानशे । सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥" "ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।" [उपर्युक्त वेदमन्त्रों में जहां जहां 'नमस्ते' एवं 'नमः' आया है वहां निराकार सत्यनारायण ओ३म् भगवान् के ध्यान-पूर्वक शिरसा नमस्कार, करबद्ध होकर यजमान करे, यह निर्देष उसे किया जाय]

४ सङ्कल्पः—ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे आसुर नाम संवत्सरे उत्तरायणे ग्रीष्मर्तौ आषाढ़ मासे शुक्ल पक्षे अष्टम्यां तिथौ मंगलवासरे अहम् अद्य "श्री उपनिषदीय सत्यनारायण तत्वकथा"--श्रावणात्मकं शुभ-कर्मकरणाय भवन्तं वृणे" (यथोचित परिवर्तन करके यह संकल्प यजमान से बुलवाया जावे । ❀

५. स्वीकारोक्ति—(उक्त संकल्प यजमान से बुलवाने पर स्वयं कथावाचक यों बोले) "वृतोऽस्मि"

६ मङ्गलाचरण—"ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः"

(सत्यार्थ प्रकाश से)

ऊपर लिखा हुआ वाक्य तथा निम्नांकित श्लोक एवं पद्यानुवाद यजमान के साथ ही सर्व उपस्थित नारिनर से बुलवाया जावे ।

❀ जिस दिन सर्व प्रथम बार यह 'कथा बांची गई उसी दिन (अर्थात् आषाढ़ सुदी ८ मंगलवार दि० १०-७-१९६२ ई०) की दृष्टि से समग्र उल्लेख इस संकल्प मे हुआ है । ("ओ. प्रे.")

"सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृदविभुः। भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः॥ ('संस्कार विधि' से)

[पद्य-परिणति]

जो सर्वात्मा, सच्चिदानंद विश्वादि, विश्वकर्त्ता, प्रभुवर।
उसके ही विभु, सर्वेश नाम हैं वेदों ने गाये प्रियतर॥
अति गुप्त रूप से वही सदा उत्तम कर्मों में नायक है।
शुचि है, अर्यमा (न्यायकृत्) है, वह सबसे बड़ा सहायक है॥
देकर सहायता हमको भी, शुभ कार्य हमारा सफल करे।
वह सत्यरूप श्री ओ३म् देव मति प्रगति हमारी विमल करे॥

७. ओ३मानन्द-कीर्त्तनाष्टकः—(सुविधानुसार यह अष्टक सर्वोपस्थिति के साथ भी गाया जा सकता है।)

"ओ३मानन्दं नमाम्यहम्, सोमानन्दम् भजाम्यहम्।
सच्चिदानन्दं नमाम्यहम्, परमानन्दं भजाम्यहम्॥
ज्ञानानन्दं नमाम्यहम्, प्राणानन्दं भजाम्यहम्।
दिव्यानन्दं नमाम्यहम्, भव्यानन्दं भजाम्यहम्॥
रुद्रानन्दं नमाम्यहम्, भद्रानन्दं भजाम्यहम्।
प्रेमानन्दं नमाम्यहम्, क्षेमानन्दं भजाम्यहम्॥
प्रणवानन्दं नमाम्यहम्, प्रभवानन्दं भजाम्यहम्।
सर्वानन्दं नमाम्यहम्, पूर्णानन्दं भजाम्यहम्॥"

('ओ३म् प्रेमी' रचित एकमात्र संस्कृत-पद्य)

॥ ओ३म् ॥

"अथ उपनिषदीय सत्यनारायण तत्व कथा"

[प्रथमाख्यान (छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ७ में से)]

"ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्"
('ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' से)

"ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शंनो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो वृहस्पतिः शंनो विष्णुरुरुक्रमः॥" (ऋग्वेद १।६।१८। ९, तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली प्रथमोऽनुवाक)

(पद्य-परिणति)—

मित्र नाम से ओ३म् हमारा, प्रीति नीतिमय हितकारी हो ।
वह वरेण्य ही वरुण रूप में, भद्रभाव से भयहारी हो ॥
न्यायनियन्ता वही अर्यमा, हो प्राणों का प्राण हमारा ।
वैभवदायक वही इन्द्र हो, वही वृहस्पति बड़ा सहारा ।
ओ३म्देव ही विष्णुरूप में पालक, पोषक, परित्राता हो ।
वही उरुक्रम शंकर बनकर पुण्य पराक्रम का दाता हो ॥

(उपनिषदीय नमो निवेदन)—

ओ३म् नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यंवदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु मामवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिश्शान्ति श्शान्तिः ॥ (तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षा वल्ली प्रथम अनुवाक; एवं सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास)

जिसे 'ओ३म् खम्ब्रह्म' श्रुति ने उचारा ।
उसे ही परमदेव, चिति ने पुकारा ॥

बड़ों का बड़े से बड़ा जो सहारा।
उसी ओ३म् को हो 'नमस्ते' हमारा॥
न केवल वचन में वरन् कर्म द्वारा।
बने सच्चिदानन्द दिल से दुलारा॥
'नमो ब्रह्मणे' का उठे गूंज नारा॥
कि वातावरण पूर्ण हो जाय सारा॥
बड़ों का बड़े से बड़ा जो सहारा।
उसी ओ३म् को हो 'नमस्ते' हमारा॥

[उक्त वेदमंत्र, उपनिषद्-वचन एवं पद्यानुवाद सबसे दुहरवाये जावें।]

आरम्भिक उक्ति (पद्यमयी)

जिसके आधार उपनिषद् हैं, वह कथा सुनाई जाती है।
आख्यानों द्वारा ओ३म् देव की गरिमा गाई जाती है।
शुभनाम सत्यनारायण भी उस निराकार का तुम जानो।
पहला आख्यान सुनो जिसमें उसकी ही महिमा पहचानो॥

आख्यान का शुभारम्भ—

"अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः। तं होवाचयद् वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति॥"
(भावार्थ) एक समय नारद मुनिवर ने महर्षि प्रवर सनत्कुमार के पास जाकर ब्रह्मोपदेश चाहा, तो महर्षि ने कहा कि तुम 'जो जानते हो, पहले वह कहो, फिर उससे आगे मैं बताऊंगा।

[पद्य]

प्राचीनकाल में एक दिवस नारद मुनिवर ने किया विचार ।१।
इस युग में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं बस महर्षिवर सनत्कुमार ॥

त्रुटि अपनी करने दूर, उन्हीं के पास क्यों न जाऊं मैं ? ।२।
यह सम्भव नहीं कि और कहीं सन्तोष यथोचित पाऊं मैं ।।

फिर निश्चय में बदला विचार, मुनिवर ने जाना ठान लिया ।३।
मंगल प्रभात में महर्षि के आश्रम के प्रति प्रस्थान किया ।।

नारद पहुँचे तब ही ऋषिवर निबटे थे अग्निहोत्र करके ।४।
सब शिष्य 'नमस्ते' करते थे चरणों में निज मस्तक धर के ।।

जब भक्ति भाव से नमो निवेदन करके नारद बैठ गये ।५।
तो नये अतिथि होने से ये ऋषि के नयनों में पैठ गये ।।

ऋषि बोले "मुनिवर! आज इधर क्यों आये हैं ? निर्देश करें ।" ।६।
नारद ने कहा—"मुझे भगवन्! शुचि आध्यात्मिक उपदेश करें ।"

हंसकर महर्षि तब यों बोले--पहले तो विदित कहें, मुनिवर !७।
फिर उससे अधिक जानने की अभिलाषा आप करें यतिवर ।।"

संकोच भरे, सुविनीत वचन उत्तर में बोले नारद ने ।८।
(अपनी विद्या थोड़े से में कह दी उन वाक्य विशारद ने ।।)

२. "स होवाच, ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदं अर्थवर्णं चतुर्थ मितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधि वाकोवाक्यमेकायनं देव विद्यां ब्रह्म विद्यां भूतविद्यां क्षत्र विद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेव जन विद्यामेतद् भगवोऽध्येमि ।"

(भावार्थ)—"हे भगवन्"

मैने चारों वेद और विविध विद्याएं पढ़ी हैं ।"

[पद्य]

(दोहे) ऋग्यजु साम अथर्व हैं पढ़े अनेकों बार ।
वे पुराण भी, जो रखें इतिहासी आधार ।। १ ।।

गणित, नीति औ' तर्क पर शास्त्र पढ़े स--विवेक।
धनुर्वेद इत्यादि भी (कोई शेष न एक) ॥ २ ॥

३. सोऽहं भगवो मंत्रविदेवाऽस्मि नात्मविद्, श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्म विदिति, सोऽह भगवः शोचामि तं मा भगवञ्छोकस्य पारंतारयतु इतितूऽँ हो वाच यद्वै किंचैत दध्यगीष्ठा नामैवैतत्। नामैवैतन्नामोपा स्स्वेति। स यो नाम ब्रह्मेत्युपासते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपासते ॥"

[भावार्थ]

'नारदजी ने आगे कहा 'कि इस प्रकार पढ़ा तो मैंने बहुत है किन्तु आत्मविद् नहीं हूँ।' महर्षि बोले--'हे नारद! जो पढ़ चुके हो वह सब नाम ब्रह्म मात्र है, इसका भी वैदिक रीति से मनन आवश्यक है।

[पद्य]

इस तरह बहुत कुछ पढ़ छोड़ा, पर आत्मज्ञान मैं पा न सका ।९।
इतना पढ़ डाला फिर भी मैं श्री सत्यदेव तक जा न सका ॥

है सुना आप जैसों ही से-'सच्चा ज्ञानी तर सकता है ।१०।
केवल अध्यात्मज्ञान ऐसा जो सर्वशोक हर सकता है ॥'

चिन्तासागर से मुझे पार करके कृपया उद्धार करें ।११।
भगवन्! त्रुटियों को परे हटा, मुझ पर अतिशय उपकार करें ॥

यह सुन, महर्षि ने कहा--"अहो इतना 'पढ़ छोड़ा' पढ़ डाला।१२।
पर कितना है 'पढ़ लिया' और पढ़ रखा' न यह देखा भाला ॥

हे नारद! वह तो शब्द मात्र जो जो तुमने अध्ययन किया।१३।
हैं नाम सभी विद्या, जब तक उन पर न यथोचित मनन किया ॥

वैसे तो, यह भी 'नाम–ब्रह्म' इसको ही विधिवत् जो सेवे ।१४।
उसको, शब्दों की सीमा तक, यह स्वेच्छागमन शक्ति देवे ।।"

४. "अस्ति भगवो नाम्नो भूय इति" "नाम्नो वाव भूयो ऽस्तीति" तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति"

(भावार्थ) नारद जी ने पूछा कि नाम से अधिक भी कुछ है ? सनत्कुमार बोले कि अवश्य है। तब नारद जी ने उसी का उपदेश चाहा।

पद्यः—

नारदजी ने पूछा कि 'प्रभो क्या अधिक नाम से भी कुछ है'? १५
बोले महर्षि, 'हां हां मुनिवर! इससे बढ़कर भी सचमुच है।'
उत्सुक नारद ने कहा। "महर्षे वही मुझे बतला देवें ।।" ।१६।
होकर कृपालु ऋषियों बोले "सब क्रमशः लो जतला देवें ।।"

कथा संगति गद्य

तब महर्षि ने नारद को विस्तार से बताया कि वाणी, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, तेज, आकाश, स्मृति, आशा और प्राण ये सब इसी क्रम से एक दूसरे से बड़े हैं, इनको महिमा और सीमा भी बताई और कहा कि 'इनमें से हरेक की जहां तक गति है वहां तक स्वेच्छागमन की शक्ति, इनके द्वारा ब्रह्म का उपासक मानव (नारि नर) भी पा लेता है।' यह सारा श्रेष्ठ ज्ञान नारद जी पूर्णतया ग्रहण करते रहे।

(कथा संगति पद्य)

विस्तार सहित फिर कहा कि 'वाणी' बड़ी नाम से भी रहती १७
मन, वाणी से होता महान् संकल्पवृत्ति मन से महती ।।
संकल्पवृत्ति से चित्त बड़ा, उससे महान् है ध्यान सदा ।१८।
विज्ञान, ध्यान से बड़ा और उसे भी बड़ी 'शक्ति' वरदा ।।

उस शक्ति रूप बल से महान् है अन्न, बड़ा उससे भी जल। १९।
है तेज बड़ा जल से नारद! आकाश,तेज से अधिक प्रबल ॥
'संस्मृति' उससे भी अधिक आशा, संस्मृति से अधिकतरा ।२०।
आशा से बढ़कर आत्मशक्ति या प्राण सम्पदा, उच्चतरा ॥

(दोहे) कारण भी कहते गये ऋषिवर सनत्कुमार।
क्यों महिमा प्रत्येक में, क्या उसका विस्तार ..३।। ❀
मन वाणी इत्यादि में उपासना की रीति।
बतलाई श्रुति सम्मता जिससे उपजे प्रीति ।।४।।

"गति जहाँ तक जिसजिसकी, उस उस से वहाँ वहाँ तक हो ।२१।
स्वच्छन्द गमनवाली सुसिद्धि पा सकता है सत्साधक ही ॥"
यों समझा समझाकर महर्षि,बातें सब कहते जाते थे ।२२।
यह सारी शिक्षा भलीभाँति नारदजी गहते जाते थे ॥
[तब तक आई भोजन वेला,सब उठे, रुचिर भोजन पाये ।२३।
कुछ समय किया विश्राम तथा पुनरपि चर्चा को जुट आये ॥

(दोहा) भोजन से पहले किया, सबने मन्त्रोच्चार।
श्लोक उपनिषद् का पढ़ा जिसमें उच्चविचार ॥५॥

(वेदमन्त्र, "ओ३म् अन्नपते अन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥"

उपनिषद् का श्लोकः—

ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै।
तेजस्विनामधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ (तैत्तिरीयोपनिषद्
भृगुवल्ली, अनुवाक् १)

❀ सविस्तार जानने के इच्छुक महिला पुरुष कृपया छान्दोग्योपनिषद् में ही यथास्थान देखें। यहां जान बूझकर संक्षेप कर दिया गया है।
['ओ. प्रे."]

५ " एष तु वाक् अतिवदति यः सत्येनातिवदति, सोऽहं भगवः सत्ये नातिवदानीति सत्यं त्वेवविजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥"

भावार्थः —

तब सनत्कुमार ने आत्म शक्ति की महिमा बताकर कहा कि उसे पहचानने पर सत्ययुक्त परमकथन करने वाला हो जाता है। नारद ने वैसा बनने की इच्छा प्रकट की तो महर्षि ने सत्य का विशेष उपदेश किया।

पद्यः—

बोले महर्षि, "हे नारदजी! अब तक जो क्रम बतलाया है ।२४।
उस पर चलकर ही आप्तों ने शुभ आत्म शक्ति को पाया है ॥
आत्मा का ज्ञाता, साक्षीवत् ऊंची संस्थिति में रहता है ।२५
बन परम कथन करनेवाला सर्वदा सत्य ही कहता है ॥
आतुर नारद ने कहा बीच में ही कि "प्रभो वैसा कर दो ।२६।
मैं करूं सत्यमय परम कथन, भगवन् ! मुझको ऐसा वर दो ॥"
ऋषिवर बोले कि "सत्य ही है तब तो केवल ज्ञातव्य, मुने ।२७।
तुम यम साधक को उचित यही—'नित सत्यदेव की कथा सुने' ॥
इतना ही नहीं, वल्कि उसको जीवन में धारण भी कर ले।' ।२८।
अविनाशी पद निश्चय पावे, यदि ध्यान सत्य पर ही धरले ॥"
[गायन] पीओ, पीओजी प्रेमपियाली, जमे हिये प्रभु-रंग ।
जीओ, जीओ, जी, भली जिन्दगी, करो भलों का संग ॥
ओ३म् नाम के रस में छक लो—
अलमस्ती का अमृत चख लो ॥
शुभ सोपानें समझो केवल, आठ योग के अंग ॥१॥
दीन यही, ईमान यही है, सत्य सिवा शिव कहीं नहीं है ॥
गाओ संग ओ३म् प्रेमी के, ओ३मानन्द अभंग ॥२॥

६. !'यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन् सत्यं वदति, विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति" "विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति।"

भावार्थः—फिर सनत्कुमार बोले कि भली भांति जानकर ही सत्य बोला जाता है अतः विज्ञान ही जानने योग्य है। तब नारद ने विज्ञान को जानना चाहा। (पद्य)

(दोहे) "विज्ञानी जब हो मनुज, सत्यकथन तब होय।
अज्ञानी तो सर्वदा असत्य में ही रोय ॥६॥
इसीलिये मुनिवर ! प्रथम तुम जानो विज्ञान।
तभी सत्य-अध्यात्म पर जमा सकोगे ध्यान" ॥७॥

नारद-बोले-"भगवन् ! उसको मैं जान सकूं-यह इच्छा है।२९।
वह क्या है ? कैसे मिल पावे ? यह मेरी सविनय पृच्छा है॥
तब ऋषिवर ने यों वचन कहे-"मति से ही वह जाना जाता।३०।
मति पाने को श्रद्धा अपनाना है अनिवार्य कहा जाता॥

[कथा संगति-गद्य] इस पर सनत्कुमारजी ने विज्ञान, मति, श्रद्धा, निष्ठा, कृति और सुख का क्रमशः एक दूसरे पर निर्भर रहना सविवरण बताया। [कथा संगति-पद्य]

'ऋत्' का आशय है 'सत्य' तथा उसका धारण ही 'श्रद्धा' है।३१।
पर निर्भर श्रद्धा भी जिस पर हे मुनिवर ! वह तो 'निष्ठा' है॥
अविचल धारणा सत्य में हो उसको ही निष्ठा कहते हैं।३२।
उसकी संप्राप्ति उन्हें होती जो 'कृति' का सत्पथ गहते हैं॥
जो जो उत्तम कर्त्तव्य कर्म उन सबको 'कृति' ही तुम जानो।३३।
श्री सत्यदेव का अर्चन भी शुभ अंग उसी का प्रिय मानो॥
है कृति भी 'सुख' पर ही निर्भर सुखप्राप्ति हेतु सब कुछ होता ३४
जो ध्येय रहित रह कृति करता वह तो जग में सचमुच रोता॥

७. यदा वै सुखं लभतेऽथकरोति ना सुखं लब्ध्वा करोति। सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। सुखं भगवो विजिज्ञास इति।"

(भावार्थ) "कृति भी सुख लाभार्थ ही की जाती है अन्यथा नहीं। हे नारद! सुख ही जानने योग्य है", तब नारद जी ने सुख को जानना चाहा। [पद्य]

नारद सत्वर ही बोल पड़े–"मुझको सुख की जिज्ञासा है।३५।
भगवन्! बुझाइये प्रबल हो रही मेरी ज्ञान पिपासा है॥"

[कथा संगति गद्य]

फिर सनत्कुमारजी ने 'भूमा' अर्थात् महान्-ता पर ही सुख का निर्भर होना बताकर आत्मभाव में उसका प्रतिष्ठित होना कहा और आत्मदर्शी की विशेषता बखानी।

[कथा संगति पद्य]

बोले महर्षि–"सुनलो मुनिवर! 'भूमा' ही में सुख सारा है।३६।
अल्पता हो जहाँ, नहीं वहाँ सुख का रह सके पसारा है॥
'भूमा' कहते महानता को जो सर्व सौख्य की माता है।३७।
इसकी जिज्ञासा करके ही साधक, इच्छित सुख पाता है॥"
नारद कह उठे बीच में ही–"वह 'भूमा मुझे बता देवें।३८।
किसमें प्रतिष्ठिता रहती है इसका भी सही पता देवें॥"
हसकर महर्षि बोले कि उसे शब्दों में कौन बता पावे? ।३९।
अनुभूतिगम्य जो संस्थिति है कोई कब उसे जता पावे?
वह आत्मभाव में आत्मभाव उसमें समझो कि प्रतिष्ठित हैं ४०।
सचमुच ये एक दूसरे में रहते दोनों ही संस्थित हैं।

(दोहे) अनुभव का ही विषय है अब आगे का ज्ञान।
आत्मा का उपदेश तो भीतर का विज्ञान॥८॥

फिर भी कुछ संकेत यह, करा सकेगा भान।
श्रवण-चतुष्टय के सहित जो दे पाओ ध्यान।। ५।।●

८. "आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तात्। आत्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वामिति। सवा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वानं एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड़ आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति। तस्य सर्वेषु लाकेषु कामचारो भवति।"

[भावार्थ] सर्वत्र आत्मशक्ति की महत्ता है, उसे पहचानने वाला आत्मक्रीड़, आत्मरति, आत्मानन्दी और स्वराट् हो जाता है। सब लोकों में यथाकामना गमन कर सकता है। आत्मज्ञान के बिना ये विशेषताएं कहाँ ? (पद्य)

आत्मा है सर्व दिशाओं में, है आत्मा ही चैतन्य रूप।४१।
उसका ज्ञाता कर पाता है भीतर शिव का दर्शन अनूप ।।
बनता स्वराट् वह आत्मक्रीड़ आनन्द मग्न हो जाता है।४२।
रह सदा आत्मरत, ऐसा जन सारे कल्मष धो पाता है ।।
वह यथेच्छ विचरण भी करता, उसकी महिमा अतुला होती।४३।
सब रोग शोक उसके मिटते गतिमति वरदा श्रेष्ठा होती ।

९. "तदेष श्लोको—'न पश्यो मृत्युं पश्यति, न रोग नोत दुःखताम्। सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश' इति। आहार शुद्धौसत्वशुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृति लम्भे सर्वग्रन्थीनां वि प्रमोक्षः। तस्मै मृदित कषायाय तमस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तं 'स्कन्द' इत्याचक्षते, तं 'स्कन्द' इत्याचक्षते ।।"

●श्रवण + मनन + निदिध्यासन + साक्षात्कार = श्रवण-चतुष्टय। (विस्तृत विवरण के लिए पढ़िये वा सुनिये कृपया 'सत्यार्थ प्रकाश' का सम्बद्ध स्थल) ["ओ३म् प्रेमी"]

[भावार्थ]—एक श्लोक भी महर्षि ने नारद को इसी आशय का सुनाया और आहार शुद्धि होने पर सत्व शुद्धि, सत्वशुद्ध होने पर ध्रुवास्मृति, स्मृतिलम्भ से सर्वग्रन्थियों का खुल जाना–इन सबकी विवेचना की। यों सदुपदेश द्वारा जिन महर्षि सनत्कुमार ने मुनिवर नारद को कृतार्थ किया उन्हीं महामानव को 'स्कन्द कहते हैं [हमारा अनुमान है कि यह पुराना ऐतिहासिक प्रसंग 'स्कंदपुराण' भी इसी कारण कहा जा सकता है ।] (पद्य)

उसकी इन्द्रियगण को सदैव आहार शुद्धि हो मिलती है।४४।
संस्मृति बन जाती ध्रुवा कि जिससे ग्रन्थि पाप की खुलती है ॥
जो उपासक वेदोक्त रीति से करे, वही तर पाता है।४५।
अज्ञान पंक में जो फंसता वह घुट-घुट कर मर जाता है ॥
उपदेश-दान बस इतना ही संभव था, सो दे डाला है।४६।
इसका पावन आचरण, मुने! शुचि मोक्ष दिलाने वाला है ॥"
यों कहकर मौन हुए ऋषिवर तब नारदजी ने नमन किया।४७।
केवल ज्ञानी से बढ़, सच्चे विज्ञानी बन, शुभ-गमन किया ॥
वापस पहुँचे निज आश्रम को, तो नारद आत्मतोषमय थे।४८।
उनके प्रवचन औ. रहन सहन, सारे आनन्दकोषमय थे ॥

दोहे—

सत्य देव की अर्चना करके हुए प्रसिद्ध ।
परमसिद्ध से ज्ञान गह सत्वर बने सुसिद्ध ॥१०॥
एक नाम था 'स्कन्द' भी जिनका, वे गुरुवर्य—
पूजित (सनत्कुमारजी) रहे सदा (ऋषिवर्य) ॥११॥

१० "होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति, तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ॥" (छान्दोग्य० प्रपाठक ८)

तस्माद्यमहरहर्वा एवं वित्स्वर्गंलोकमेति ॥" "सत्यंज्ञानं अनन्तं ब्रह्म"

[उपनिषदीय सूक्तियाँ] [श्लोक]

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥' ' (मनुस्मृति १।१०, सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास)

भावार्थः—वह अमृत, अभय, परम पुरुष ब्रह्म है, उसी ब्रह्म को 'सत्य' नाम से भी पुकारा जाता है।
ब्रह्म अर्थात् सत्यदेव को भलीभाँति जानने वाला वेदज्ञ मानव (नारि-नर) प्रतिदिन स्वर्गलोक अर्थात् सुख-विशेष में ही रहता है। वही सत्यदेव ओ३म् परमात्मा, ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त है। उसी का नाम 'नारायण' भी है क्योंकि 'नारा' अर्थात् जीवों का तथा जलों का उसमें अयन अर्थात् निवास स्थान है अतः मनुस्मृति के प्रमाण से नारा+अयन=नारायण भी वही ओ३म् देव प्रभुवर है। ऐसे सत्यनारायण भगवान् को वेदादिशास्त्रों की विधि से उपासना करने पर ही कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं। *

(जैसा महर्षि सनत्कुमार अथवा महामानव भगवान् स्कन्द से शिक्षा पाकर ऋषि नारदजी को यथार्थ ज्ञान हुआ था)

आख्यान समाप्ति पद्यः—

४९. धर ध्यान सत्यनारायण का उर की आंखें मुदमय खोलें।
पहला आख्यान समाप्त हुआ, सब ओ३म् देव की जय बोलें ॥

[जयघोषः—सबसे आग्रह पूर्वक ये जयकार बुलवाये जावें।]

१. सत्यनारायण ओ३म् भगवान् की जय।

२. सत्य स्वरूप ओंकारनाथ की जय।

---

* "नान्यः पंथाः विद्यते अयनाय" (वेद) = उस अयन के लिये अन्य कोई पथ या मार्ग ही नहीं है। ("ओ. प्रे.")

३. सच्चिदानन्द ब्रह्म परमात्मा की जय ।
४. सिद्धिदाता सत्यदेव की जय ।
५. परमपिता परमेश्वर की जय ।

[इति प्रथमाख्यानः]

[।। अथ द्वितीयाख्यानः ।।] (छन्दोग्योपनिषद् प्र. पा. ४, खं. ४)]
।।"ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय ।।" संस्कार वि ध से)

आरभिक उक्ति पद्य:—

जिसके आधार उपनिषद् हैं वह कथा सुनाई जाती है ।
आख्यानों द्वारा ओ३म् देव की गरिमा गाई जाती है ।५०।
शुभ नाम सत्यनारायण भी उस निराकार का तुम जानो ।
आख्यान दूसरा सुनो कि इसमें उसकी महिमा पहिचानो ।५१।

[ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना मंत्राः । (महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विनियुक्त)

नोटः—इन आठों मन्त्रों का एक ही गायन में सर्वथा स्वतन्त्र पद्यानुवाद (हमारा किया हुआ) यहाँ दिया जा रहा है । ("ओ. प्रे.")]

गायन:—प्यारे देव ! दुरित कर दूर ।
हे सविता ! अविवेक अंधेरा कर दे चकनाचूर ।।टेक।।

(मन्त्र १) ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रम् तन्न आ सुव ।। (यजु० ३०/३)

पद्यानुवादः—

भद्र बनें हम शुद्ध बुद्ध हों, उन्नति पथ हमको न रुद्ध हों ।
मंगलमय हों जीवन जिनमें शुभ गुण हों भरपूर ।।प्यारे।।

(मंत्र २.) ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। (यजु० १३/४ ऋग् ०८।७।३।१)

पद्यानुवाद—

तेजोमय ! तू भूनभधारी, स्वामी एक, अनन्त विहारी ।
भक्ति हव्य से तुझको पूजें, तू नूरों का नूर ।।प्यारे।।

(मंत्र ३) ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते । प्रशिषं यस्य देवाः यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। (यजु० २५।१३)

पद्यानुवादः—

प्राणदायक ! शौर्यविधायक ! तेरी छांह अमरता-दायक ।
महाबली ! तुझसे शासित हैं मृत्यु सरीखे क्रूर ।।प्यारे।।

मंत्र ४ ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।
(यजु० २३।३)

पद्यानुवादः—

महिमामय! तू जड़ जंगम का, द्विपद चतुष्पद के संगम का
ईश रहा, है तथा रहेगा, रे अलबेले शूर ।प्यारे।।

(मंत्र ५) ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। (यजु० ३२।६)

पद्यानुवादः—

अन्तरिक्ष में तू विमान-सा धारक है इस जग वितान का
तुझ में ही तो थमे हुए हैं, तारक–चन्दा–सूर ।। प्यारे ० ।।

(मंत्र ६) ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।। (ऋग्वेद १०।१२१।१०)

पद्यानुवादः—

प्रजापते! तू एक अनूठा व्यापकता का तार न टूटा।
हम अर्चन करते हैं तेरा, दे संपत्ति भरपूर ॥ प्यारे० ॥

(मंत्र ७) ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशाना स्तृतीये धामन्नध्यैरन्त ॥ (यजु० ३२।१०)

पद्यानुवादः—

तू उत्पादक, बन्धु तू ही है धाता करुणासिंधु तू ही है।
तृतीय धाम! तुझमें जो बसते, वे अमृत में चूर ॥ प्यारे० ॥

(मंत्र ८) ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ (यजु० ४०/१६)

पद्यानुवादः—

अग्रणी! हमें सुपथ चलादे, कल्मष हमसे परे हटा दे।
बारम्बार नमन है, तुझको सुखद दे, दुख हों दूर ॥ प्यारे० ॥

आख्यान आरम्भः—

१. सत्यकामो ह जाबालो, जबालां मातरं आमंत्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति ! विवत्स्यामि। किं गोत्रोन्वहमस्मीति' सा हैनमुवाच, 'नाहं तद् वेद तात! यद्गोत्रस्त्वमसि। जबाला तु नामाऽहमस्मि 'सत्यकामो' नाम त्वमसि, स सत्यकामो जाबालो ब्रुवीथाइति ॥''

भावार्थः—प्राचीन काल में जबाला नाम की एक माता से उसके पुत्र ने पूछा कि मेरा गोत्र क्या है, मैं गुरुकुल में जाना चाहता हूँ, वह बोली कि मैं यौवन में बहुत-सों की सेवा में रही

हूँ तभी तेरा जन्म हुआ। अतः गोत्र नहीं जानती, पर मैं जबाला हूँ तू सत्यकाम है सो 'सत्यकाम जाबाल' कह देना।

पद्यः—

था पुराकाल में इक बालक जो 'सत्यकाम' कहलाता था।
विद्योपार्जन को गुरुकुल में जाना जिसके मन भाता था।५२।
निज माता से उसने पूछा 'तुम मेरा गोत्र बतादो, माँ।
गुरुवर से क्या, कैसे कहदूं वह सब मुझको समझा दो, माँ।५३।
निष्कपटभाव से माँ बोली-परिचारिणी रही यौवन में।
बहुतों की सेवा करती थी, बस उन्हीं दिनों में तुम जन्मे।५४।
इसलिये गोत्र का पता नहीं, पर मेरा नाम 'जबाला' है।
यों 'सत्यकाम जाबाल' तुम्हारा नाम सुकारण वाला है।५५।
गुरुवर से यह सब कह देना, है परमधर्म नित सत्य वचन।
जो सत्यदेव से तनिक हटे उसका तो होता अधः पतन।५६।

२. "स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच 'ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्या स्युपेयांभगवन्तमिति'। तं हो वाच 'किं गोत्रोनु सोम्यासीति' स हो वाच 'नाहमेतद्वे द भो यद्गोत्रोऽहमस्मि. अपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीत् वह्वहंचरन्ती परिचारिणी यौवने त्वाम लभे। साहमेतन्नवेद यद् गोत्रस्त्वमसि, जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति। सोऽहं सत्यकाम जाबालोऽस्मि भो इति।"

भावार्थः—वह बालक हारिद्रुमत गौतम नामक ऋषि के गुरु कुल में पहुँचा, नियमानुसार गुरु ने गोत्र पूछा, तो माता का उत्तर ज्यों का त्यों कहकर अन्त में निस्संकोच भाव से बोला कि 'इस प्रकार से मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।

पद्यः—

इतना सुनकर चल दिया पुत्र, पहुँचा गौतम के आश्रम को।
जब गुरु ने पूछा गोत्र तभी कह दिया सभी द्विजसत्तम को।५७।

३. "तं हो वाच–नैतद् अब्राह्मणो विवक्तुमर्हति, समिधं सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानाम बलानां चतुः शता गा निराकृत्योवाचे मा: सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तयेतिस ह वर्ष गणं प्रोवास ता यदा सहस्रं सम्पेदुः ॥"

भावार्थः—

यह सुनकर गुरु हर्ष से बोले कि अब्राह्मण ऐसी सत्य बात नहीं कह सकता, तू अवश्य ही ब्राह्मण है, समिधा ले आ मैं तुझे यज्ञोपवीत देकर गुरुकुलवासी बनाता हूँ। फिर गुरु ने चार सौ दुर्बल गायें चराने को उसे सौंपी। वह उन्हें लेकर जाते समय कह गया कि ये जब तक हजार न होंगी, मैं न लौटूंगा। तत्पश्चात् कई वर्ष तक वह प्रवासी रहा यहां तक कि वे गौऐं बढ़कर एक हजार हो गईं।

पद्यः—

गौतम ऋषि पुलकित हो बोले, "प्रिय! तू ब्राह्मण है निश्चय ही।
कह सके अब्राह्मण सच कैसे हेतु नहीं संशय कुछ भी॥ ❀
हे सोम्य! सत्य से तू न गिरा, इसलिये अभी समिधा ले आ।
यज्ञोपवीत देकर प्रविष्ट कर लेता हूँ सुशिष्य हो जा।५९।

दोहेः—

तब गुरु ने सौंपी उसे कृशा चार सौ गाय।
'वन में ले जाओ इन्हें' आज्ञा दी उमंगाय॥१२॥
धेनु ले चला, कह गया गुरु से यों जाबाल।
'हो जब तक न हजार ये, तब तक रुके न चाल॥१३॥

❀ हमें तो यह आशय प्रतीत होता है कि इतना भारी सत्य केवल ब्राह्मण ही बोल सकता है, अन्य द्विज भी नहीं। ("ओ. प्र.")

निर्मल हृदयाकाश में गूंजे प्रभु के बोल।
अन्तर्ध्वनि ऐसी हुई जिसका मोल न तोल ॥१४॥
भीतर के आकाश की वह वाणी अनमोल।
सत्यकाम को प्रेरणा देती थी वेतोल ॥१५॥

गायन:—

सम्हल कर कदम धर, कदम धर सम्हल कर।
सुपथ पर चला चल, चला चल सुपथ पर॥
स्वयं का निरीक्षण किये जा, दिवाने!
डगों का परीक्षण लिये जा, सयाने!!
बढ़े जा लगातार, पा लक्ष्य बढ़कर ॥१॥ सम्हलकर ०
नहीं काहिलों को कभी ध्येय मिलता,
नहीं जाहिलों को परमगेय मिलता।
अरे, बैठ तू मत समुत्साह तजकर ॥२॥ सम्हलकर ०
सदा साथ साहस का पाथेय रखना।
अनुपमेय मस्ती अपरिमेय रखना॥
तो, जीवन का साफल्य हो तेरा अनुचर ॥३॥ सम्हलकर ०
वचन में, हृदय में, सभी कर्म में भी,
सदा सत्य व्यवहार, बस धर्म ये ही॥
उजाला हो सच का तो फिर है कहाँ डर ॥४॥ सम्हलकर ०

पद्य:—

इस वन से उस वन में फिरते-फिरते कितने ही वर्ष हुए।
वर्षा से आतप और शीत से कई विकट संघर्ष हुए ।६०।

कथा संगति गद्य:—

तब, एक दिन उसे भान हुआ, मानो उनमें से एक बैल कहता हो कि हम एक सहस्र हो गये, अब आश्रम को लौटो। इस पर वह लौट पड़ा। मार्ग में चार पड़ाव किये, प्रत्येक पर

क्रमशः ऋषभ, अग्नि, हंस और मद्गु उसको ब्रह्म के एक एक पाद एवं चार-चार कला का ज्ञान देते हुए लगे परन्तु समक्ष में कोई न दिखा। ब्रह्म तेज से सत्यकाम का मुखमण्डल दीप्तिमान हो गया।

कथा संगति पद्यः—

इक दिन सहसा यों सत्यकाम को लगा कि वृषभ कह रहा है।
'प्रिय सत्यकाम! किसलिये कष्ट अब भी तू यहाँ सह रहा है।६१।
संख्या सहस्र से अधिक हुई हम पशुओं की तू सत्य जान।
ले चल वापस आश्रम हमको, हठ, अरे, और क्यों रहा ठान।६२।
चौंका जाबाल, गिना उसने तो देखा, व्रत परिपूर्ण हुआ।
वह लौट चला गुरु आश्रम को, पशुदल संगी संपूर्ण हुआ।६३।
पथ में पड़ाव जब प्रथम किया तब वृषभ सिखाता लगा उसे।
शुभ चार कलायुत प्रथमपाद प्रभु का समझाता लगा उसे।६४।
दूजे पड़ाव पर अग्निदेव, दूसरा पाद–बतलाते थे।
उसकी जो चार कलायें हैं वे समझाकर जतलाते थे।६५।
आया तीसरा पड़ाव कि तब उपदेश हंस ने उसे दिया।
तीसरा चतुष्कल पाद ब्रह्म का, सत्यकाम ने ज्ञात किया।६६।
चौथे पड़ाव पर चोथा भी हो गया विदित शुभ पाद परम।
इसकी चारों ही कला बताई किसी मुद्ग ने शुचि अनुपम।६७।
इन सब उपदेष्टा गण का तो बस भान मात्र ही हो पाया।
बटु के समक्ष आकर कोई क्षण को न उपस्थित हो पाया।६८।
सच पूछो तो सत्यात्मा ने सब सत्यकाम को बतलाया।
भासित फिर भी यों हुआ कि मानो ऋषभादिक ने जतलाया।६९।
मुखमण्डल दमक उठा उसका, अनजाने ब्रह्म तेज उमगा।
वैसी उत्तम संस्थिति में ही वह गुरु के आश्रम को पहुँचा।७०।

४. "प्राप हाचार्यकुलम्। तमाचार्योऽभ्युवाद–"सत्य काम ३ इति" "भगव" इति ह प्रतिशुश्राव, 'ब्रह्मविदिव वै सौम्य

भासि, को नु त्वानुशशासेति" "अन्ये मनुष्येभ्य" इति ह प्रति-जज्ञे "भगवांस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापदीति' तस्मै हैतदेव वाच अत्र ह न किंचन वीयातेति वीयातेति ॥"

भावार्थः—

गुरुकुल में आचार्य ने पूछा "किसने तुझे शिक्षा दी ? ब्रह्म तेजोमय तू दिख रहा है" वह बोला मनुष्यों से भिन्न शक्तियों ने फिर भी गुरुमुख से सुनूंगा। क्योंकि उसकी महिमा आप जैसे आप्तों ने अधिक कही है।"

आचार्य ने उसके विनय और सत्य से प्रसन्न होकर नज्ञ शैली में वही उपदेश उसे दिया, फिर समावर्तन करा के सत्य-काम लौटा।

पद्य:—

गौतम बोले "हे सत्यकाम ! किसने तुझको उपदेश दिया।
तेरे प्रदीप्त मुखमंडल ने मुझको अद्भुत संदेश दिया।७१।

दोहे:—

है असत्य से दूर तू सत्यकाम शुभनाम।
इसीलिये सच कहेगा प्रिय सुशिष्य गुणधाम" ॥१६॥
उत्तर में जाबाल ने कहा कि "हे गुरुदेव !
सत्य कथन की तो मुझे पड़ी सदा से टेव ॥१७॥

पद्य:—

सच कहता हूँ कि मनुज ने तो शिक्षाएं दी हैं तनिक नहीं।
पर वह सब अकथ कहानी है किसने कैसे ये मुझे कहीं।७२।
हाँ, बड़ी विलक्षण विधि वह थी जिससे मैंने शिक्षा पाई।
फिर भी श्रीमुख से श्रवण करूं यह श्रद्धा बढ़ती ही आई।७३।

सुन रखा आप सम ऋषिगण से-आचार्य ब्रह्म विद्या देवें।
कल्याण उन्हीं का होता है जो गुरुमुख से शिक्षा लेवें ७४॥"
गौतम प्रसन्न होकर बोले "पहले तो सीखा हुआ कहो।
फिर सुनलो रहा सहा मुझसे, इस भाँति परम कल्याण गहो ७५॥"
जाबाल कह चला प्राप्त ज्ञान, गुरुवर सुनकर सन्तुष्ट हुए।
'प्रिय ! पूरी विद्या यही' (कि यों कह शिष्य-वचन सम्पुष्ट किये ७६

कथा संगति पद्य:—

लौटा जाबाल, जबाला को सुख देता हुआ रहा घर में।
विदुषी भार्या भी वैदिक विधि से वर लाया कालान्तर में ७७॥
पति पत्नी खूब जबाला की नित सेवा करते रहते थे।
रखकर सन्तुष्ट उसे प्रतिदिन आशीषें पाया करते थे ७८॥
इक दिन वृद्धा चल बसी क्योंकि संसृति का ये तो अटल नियम।
अब सत्यकाम ही सपत्नीक रह गये चलाते निज आश्रम ७९॥*

(छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ४ खण्ड १०)

५. उप कोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्य-मुवास, तस्य ह द्वादश वर्षाण्यग्नीन् परिचचार स ह स्मान्यानन्ते वासिनः समावर्तयंस्तहस्मैव न समावर्तयति । तं जायो वाच, तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन् परिचारीन्मात्वाग्नयः परिप्रवोचन् प्रब्रूहि-स्मा इति' तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासांचक्रे ।।"

---

*यह तो कथाप्रणेता की ही कल्पनामात्र है, परन्तु आगे जो आख्यान इसी मे जोड़ा जा रहा है वह छान्दोग्योपनिषद में वहीं आगे चलकर आया हैं उसे यहां जोड़ देना अवश्य कथाप्रणेता का ही कार्य है 'सत्यकाम' का उल्लेख देखकर ऐसा करने को जी चाहा और तदनुसार सहसा कर डाला है। ("ओ. प्रे.")

भावार्थः—

सत्यकाम के आचार्यत्व वाले इस गुरुकुल में कामलायन उपकोसल भी एक ब्रह्मचारी था। उस बेचारे को १२ वर्ष हो गये फिर भी उसका समावर्तन नहीं हुआ अन्यों का होता रहा, तब आचार्य पत्नी ने उसकी सिफारिश की परन्तु सत्यकाम अनसुनी करके प्रवास पर चल दिये। इससे उपकोसल को बहुत दुःख हुआ।

पद्यः—

इनके गुरुकुल में उपकोसल नामक था एक ब्रह्मचारी।
जिसने कितने ही बार किये यज्ञों के अनुष्ठान भारी।८०।

दोहेः—

वैदिक विधि से लिया सब उपकोसल ने ज्ञान।
कर्मकाण्ड का भी रखा उसने पूरा ध्यान ॥१८॥
बीत गये बारह बरस, मिला न गमना देश।
अगणित सहपाठी गये ले लेकर उपदेश ॥१९॥

पद्यः—

तब गुरुपत्नी ने सत्यकाम से कहा कि "स्वामिन्! अनुमति दें।
इस उपकोसल का करें समावर्तन, जाने की स्वीकृति दें।८१।
अन्यथा अग्नियाँ कहीं आपको दें डालें अभिशाप नहीं।
वे सभी क्योंकि इस बालक से विधिवत् सुपूजिता सदा रहीं।८२।
सुन के भी कर अनसुनी बात, निकले प्रवास पर सत्यकाम।
वह समावर्तनेच्छुक बालक हो सका नहीं यों पूर्णकाम।८३।

६. "सह व्याधिनानशितुं दध्रे। तमाचार्यजायोवाच "ब्रह्मचारिन्! अशान, किन्नुनाश्नासीति "सहोवाच" बहव इमे अस्मिन्पुरुषे कामानानात्यया व्याधिभिःप्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥"

भावार्थः—

तब ब्रह्मचारी ने अनशन ले लिया, गुरुपत्नी ने कारण पूछा तो कहा कि कामना पूर्ति न होने से मानसिक व्यथाग्रस्त हूँ अतः भोजन कैसे करूँ ?

पद्यः—

तब उसने अनशन व्रत ठाना, गुरुपत्नी समझाने आईं।
सचमुच गुरुकुल में होती हैं वे ही तो माता की न्याईं।८४।
बोलीं कि 'बटुक! भोजन कर तू, किसलिये बना अनशनधारी'।
वह उत्तर में कह उठा कि "माँ! मन में है व्याधि मुझे भारी।८५।
मैं मन्द भाग्य वाला भी हूँ, भोजन से कैसे प्रीति करूँ ?।
बस, अब तो यही ध्येय मेरा, 'सद्ज्ञानप्राप्ति की रीति वरूँ'"।८६।
जब अनशन को बीते कुछ दिन, तब उसको ऐसा भान हुआ।
मानो अग्नियाँ बोलती हों (अस्फुट-सी ध्वनि का ज्ञान हुआ)।८७।

७. "अथ हाग्नयः समूदिरे-'तप्तो ब्रह्मचारी, कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति।' तस्मै होचुः 'प्राणोब्रह्म, कं-ब्रह्म, खं ब्रह्मेति' स होवाच-'विजानाम्यहं यत्प्राणोब्रह्म, कं च तु खं ब्रह्म च न विजानामीति।' ते होचु 'यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति' 'प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥"

भावार्थः—

वे उपासित अग्नियाँ मानो उसी के बारे में कर रही थीं कि 'इसने तपपूर्वक हमारी सेवा की है, इसे हमरहस्योपदेश करें।' और तब वे मानो कह चलीं कि 'हे उपकोसल! ब्रह्म प्राणस्वरूप है, कम् है, खम् है। वह बोला कि 'प्राण ब्रह्म तो मैं जानता हूँ पर कम् व खम् नहीं।' उन्होंने कहा-'अरे, कम् है वही खम् और जो खम् है वही कम है।

['कम्'-सुखस्वरूप, 'खम्'-आकाश वत् व्यापक। ('ओ. प्रे.')]

पद्यः—

उसके बारे में ही बातें करती वे उसे प्रतीत हुईं।
कहती थीं–'इस बटु के द्वारा सेवायें नित्य पुनीत हुईं ।८८।
रह तपोनिष्ठ इसने अर्चन, विधिवत् ही किया हमारा है।
यह उचित कि दें उपदेश इसे, कह दें रहस्य जो सारा है ।८९।'
कुछ देर बाद, वे फिर बोलीं,-रे उपकोसल ! सुन ब्रह्म ज्ञान।
वह प्राणरूप, कम्ब्रह्म वही, खम्ब्रह्म उसे ही अरे जान ।९०।
बोला उपकोसल तभी बीच में–'प्राण ब्रह्म तो मैं जानूँ ।
पर नहीं अन्य दोनों का कुछ भी पता कि जिससे पहचानूँ ।९१।
अग्नियां पुनः उससे मानों कुछ कहती हों, यह उसे लगा।
अन्तर्ध्वनि की इस छलना पर विस्मित सा बटु रह गया ठगा ९२
तब उसने सुना अग्नियों से-'कम्ब्रह्म रहे सुख रूप सदा ।
है निराकार खम्ब्रह्म, उभय में है अभिन्नता ही सुखदा ।९३।
जो है कम्ब्रह्म, वही तो है खम्ब्रह्म, ध्यान तू धर ले ।
खम् प्राण तथा कम्ब्रम्ह, एक ही शक्ति (जिसे उर से वर ले) ।९४।

[कथा संगति (पद्य)]—

दोहेः—

मिला जुला जब दे चुकीं उसे अग्नियाँ ज्ञान ।
उपदेशों का तब हुआ अलग अलग यों भान ॥२०॥
दक्षिणाग्नि से मिल सका आध्यात्मिक सन्देश।
गार्हपत्य (शुभ) अग्नि से पाया प्रभु–निर्देश ॥२१॥
फिर आहवनीयाग्नि से आत्मा का सुविवेक ।
उपकोसल को मिल गया, संशय रहा न एक ॥२२॥

८. "ते होचुरूपकोसल ! एषा सोम्य ! तेऽस्मद्विद्याऽऽत्मविद्या। चाच।यस्तु ते गतिं वक्तेति आजगामहास्याचार्यस्तमाचार्योऽभ्य-

वादोपकोसल ३इति । भगव इति प्रतिशुश्राव । ब्रम्हविदिव सोम्य ! ते मुखं भाति, को नुत्वामनुशशासेति' 'को नु मानुशिष्याद् भो, इति ।

हापवेनिहनुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नी नभ्यूदे, किन्तु सोम्य ! किल तेऽवोचन्निति ।"

भावार्थः—अग्नियों का उपदेश समाप्त होता-सा लगा, अन्त में वे मानो यों बोलीं कि अधिक तुम्हें आचार्य कहेंगे, वे भी आते ही हैं और तभी सचमुच सत्यकाम वापस आ गये । ब्रह्म तेजोमय मुखमण्डल देखकर उपकोसल से पूछा कि तुझे किसने शिक्षा दी । तब बटुक ने सब कह सुनाया ।

पद्य:—

दोहे:—सबने मिलकर अन्त में यही सुनाया सार ।
'एक ओ३म् की शक्ति का नाना विध विस्तार ।।२३।।
लो, आते आचार्य भी, उनसे पूछो बात ।
स्वानुभूति वे कह सकें सद्विद्या निष्णात ।।२४।।
सचमुच गुरुवर आ गये, पर न शिष्य को ध्यान ।
ब्रह्मतेजमय बटु उन्हें दिखा विमल अम्लान ।।२५।।

प्रियछंदः—

विस्मय से तभी पुकार उठे प्लुत में—हे प्यारे उपकोसल ।
किसने तुझको उपदेश दिया, ज्ञानी—सा तेरा मुखमण्डल ।९५।
बटु बोला—'कौन सिखा पाता ? फिर भी कुछ ऐसा भान हुआ ।
मानो अग्नियाँ सिखाती हों, तब से ही मुझको ज्ञान हुआ ।९६।
यह सुन, किंचित सन्देह नहीं, गुरुवर के उर में उठ पाया ।
अपनी उद्बोध प्राप्ति का उनको पुण्य प्रसंग याद आया ।९७।
सत्वर पूछा—'हे शिष्य ! कहो, क्या क्या तुमको संदेश दिया ।
तब उपकोसल ने कहा यथावत् जो जो था उपदेश लिया ।९८।

९. 'इदमिति' ह प्रतिजज्ञे-'लोकान्वाव किल सोम्य! तेऽवोच-न्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो, न श्लिष्यन्त एवमेवं विदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति।' 'ब्रवीतु मे भगवा-निति' तस्मै हो वाच॥"

भावार्थः—

प्राप्त-ज्ञान जब शिष्य ने सुना दिया तब आचार्य बोले "यह तो केवल लोकों की विद्या है। मैं तुझे 'जल में कमलदल तुल्य' (पद्मपत्रमिवाम्भसा रह सकने की विद्या बताता हूँ। "तत्पश्चात् सत्यकाम ने उसे ब्रह्मज्ञान के गूढ़ रहस्य बतलाये।

पद्य:—

गम्भीर गिरा से सत्यकाम फिर यों--बोले-हे सोम्य! सुनो।
यह लोकों ही का ज्ञान तुम्हें मिल सका, इसे भी वत्स! गुनो।९९।
पर, मैं तुमको वह परम गुह्य शुचि ब्रह्म ज्ञान बतलाता हूँ।
जो पद्मपत्र सम रख सकता विज्ञान वही जतलाता हूँ।१००।
अनुभूति और दृष्टान्तयुक्त विद्या गुरु तब दे डाली।
(सत्पात्र शिष्य से उन्हें हुआ सन्तोष कि उसने सब पा ली)।१०१।
फिर विधिवत् हुआ समावर्त्तन, गुरुकुल को गौरव, भोज मिला।
उपकोसल, गुरुवर, गुरुभार्या तीनों का उर अम्भोज खिला।१०२।

आख्यान समाप्तिः—

धर ध्यान सत्यनारायण का, उर की आँखें मुदमय खोलें।
दूसरा आख्यान समाप्त हुआ, सब ओ३म् देव की जय बोलें।१०३।

जयघोष:—

[पाँचों ही, प्रथमाख्यान की इति पर लिखितानुसार।]

(इति द्वितियाख्यान)

[अथ तृतीयाख्यानः (छान्दोग्य० प्रपा०४, खं० १)]

॥ओ३म् तत्सत् परब्रह्मणे नमः ॥ (आर्याभिविनय, प्रथम प्रकाश से)

आरंभिक उक्तिः—

जिसके आधार उपनिषद् हैं, वह कथा सुनाई जाती है।
आख्यानों द्वारा ओ३म् देव की गरिमा गाई जाती है।१०४।
शुभ नाम सत्यनारायण भी उस निराकार का तुम जानो।
आख्यान तीसरा सुनो कि इसमें उसकी महिमा पहिचानो।१०५।

वेदमन्त्रः—

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वम्माता शत क्रतो बभूविथ अधा ते सुम्नमीमहे ॥ (सामवेद, ८१५ वाँ मन्त्र)

पद्यानुवादः—

ओ३म् देव ! हे वसो ! प्रीतिमय ! तुम ही पिता हमारे हो।
परम पूजिता माता हो तुम, सब सुजनों के प्यारे हो ॥
यज्ञ रूप शुभ कर्म सैकड़ों तुमने ही विस्तारे हैं।
रहते जड़ जंगम साथ ही आश्रित सदा तुम्हारे हैं ॥
इसीलिये केवल तुम से ही, हम सारे सुख माँग रहे।
भक्ति भाव से तुम्हें शान्तिमय सुम्नप्रदाता मान रहे ॥

वेदमन्त्रः—

ओ३म् उत वात पिता असि न उत भ्रात उत नः सखा। सं नो जीवातवे कृधि ॥ (सामवेद)

सर्वथा स्वतन्त्र पद्यानुवादः—

प्रभो ! तुम्हारी महिमा भारी, पार कहाँ किसने पाया।
विभो ! परमवरणीय तुम्हीं हो यह यश वेदों ने गाया ॥
ओ३म् नाम वाले हे भगवन् ! हम पर करुणा बरसाओ।
जिनसे जीवन पावन बनले उन शुभ-गुण से सरसाओ ॥

श्रद्धामय-श्रम करके भरसक, फिर तुमसे प्रार्थना करें ।
सदा ओ३म् प्रेमी ही रहलें, मैत्री की याचना करें ॥
प्रभो ! तुम्हारी महिमा भारी ०

गायनः—

जो बोले सो हो जाय अभय, भगवान् की जय भगवान् की जय ।
जो गावे सो होवे तन्मय, ओ३म् मंगलमय ओ३म् मंगलमय ॥
आनन्द रूप है नाद ब्रह्म, मस्ती की अनुपम गागर है ।
संगीत कला का चरम बिन्दु ओंकार अमित रत्नाकर है ॥
जो जन श्रद्धा से ध्यान धरें अमृत रस पावें निस्संशय ॥१॥
है साध्य वही, आराध्य वही, सच्चे ध्याता का ध्येय वही ।
शुचिता की निधि है अपरिपेय, शुभ श्रेय वही, गुरु गेय वही ॥
जो अर्थ ज्ञान के साथ जपें, भवसागर तर जावें निश्चय ॥२॥
वह न्याय नियन्ता है उसके सद्‌भक्त न होवें अन्यायी ।
वह सत्य सिंधु है सत्यं ही अपनाते उसके अनुयायी ॥
जो निर्विकार के साधक, हैं उनके विकार होते है क्षय ॥३॥
'तेजोमयिधेहि' माँगने के संग-संग पुरुषार्थी बनते हैं ।
'मन्युम्मयिधेहि' याचना के संग ही दुरितों से लड़ते हैं ॥
जो कर्मनिष्ठ याचक होते उन पर बनते भगवान् सदय ॥४॥
निर्लेप निरंजन परमदेव, घट-घट में व्यापक अविनाशी ।
मिल पाता आत्म सदनमें ही अनुभूति गम्य वह सुखराशी ॥
जो पहले निज को जान सकें, वे पावें शिवं अगम अक्षय ।

नोटः—इस गायन की टेक को क्रमानुसार बीच बीच में सब श्रोता नारिनर से कीर्तन रूप में बुलवाया जा सकता है। यदि पूरा गायन ही सबसे बुलवाया जावे तो अधिक अच्छा रहे। ऐसा सफल प्रयोग किया जा चुका है। ("ओ. प्रे.")

आख्यान आरंभः— १.

"जान श्रुतिर्हिपौत्रायण श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। स ह सर्वत आवसथान् मापयांचक्रे, सर्वत एव मे अत्स्यन्तीति।"

भावार्थः—

पुराकाल में जानश्रुति पौत्रायण नामक एक श्रद्धालु और दानशील राजा था जिसने कई धर्मशालाएं बनवाई थीं व निःशुल्क भोजन व्यवस्था भी उनमें की थी।

पद्यः—

दोहे—पूर्व समय की बात है, नृपति जान श्रुति, एक।
दानशीलता की सदा रखता था शुभ टेक ॥२६॥
पौत्रायण उपनाम भी था उसका विख्यात।
दूर दूर तक दान का यश था सबको ज्ञात ॥२७॥

प्रियछंदः—

उस नृपति जान श्रुति ने, आहा बनवाई कई धर्मशाला!
जिनमें पाता था बिना मूल्य भोजन भी, हर टिकने वाला॥
पर दानवीरता का उसको अभिमान अधिक उत्पन्न हुआ।
सोचा कि 'नहीं मुझसे बढ़कर कोई सुकीर्ति सम्पन्न हुआ १०७॥

२. "अथ ह हंसा निशायामति पेतुः। तद्धैवं हंसोहंस मभ्युवाद। हो होऽयि भल्लाक्ष! भल्लाक्ष!! जान श्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवाज्योतिराततं तन्माप्रसाङ्क्षीः तन्मा प्रधाक्षी-रिति तमु ह परः प्रत्युवाच-'कम्वर ऐनमेतत्सन्तं सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति।' 'योनु कथं सयुग्वा रैक्व' इति! 'यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येव मेनं सर्वं तदभि समेति यत्किंच प्रजा साधु कुर्वन्ति। यस्तद्वेद यत्सवेद। स मयैतदुक्तं इति।"

भावार्थ:—एक रात को राजा ने सपने में अपने पलँग के ऊपर से दो हंस उड़ते देखे और सुना कि एक, दूसरे से कह रहा था कि 'राजा के पलँग के ऊपर होकर उड़ोगे तो जल जाओगे, उसका यश प्रखर है' तब दूसरा बोला कि 'रैक्व जैसा तो किसी का यश नहीं है' इस पर पहले ने रैक्व के बारे में पूछा तो दूजे ने कीर्ति कही अर्थात् रैक्व ऐसा है, वैसा है, इत्यादि बखान किया।

पद्य:—

तब एक रात को राजा ने ऐसा विचित्र सपना देखा।
"उड़ते उड़ते दो हंसों ने मानो पलँग उसका पेखा।१०८।
यों कहा एक ने दूजे से–'देखो, हे भली आँख वाले!
यदि उड़लो इस पलँग पर से, तो बन लो जले पाँख वाले।१०९।
क्या नहीं जानते हो कि जानश्रुति राजा है प्रतापशाली।
दहके यश, दानशीलता का, जैसे कि प्रचंड अंशुमाली।११०।
इस पर दूजा हंसकर बोला, 'कैसी बेढंगी बात, अरे!
है एक सयुग्वा रैक्व, सखे! जो सबसे अधिक प्रताप धरे।१११।
यह नृप साधारण बेचारा; क्या इसमें समता की क्षमता।
सच पूछो तो सुकीर्ति रखती है रैक्व देव पर ही ममता'।११२।
उत्सुक पहले ने कहा कि 'वे कैसे हैं, मुझको समझाओ।'
दूजा उत्तर में यों बोला–'सब तो किस तरह समझ पाओ।११३।
फिर भी थोड़े में कहता हूँ–उत्तमता संस्थित उनमें ही।
सब यज्ञकर्म हैं सुप्रतिष्ठित, विद्या सम्मानित उनमें ही।११४।
वे यशस्तेज से पूरित हैं, राजा नगण्य उनके आगे।
हैं ज्ञानदान में शूरवीर, गौरव में भी सबसे आगे" ।११५।

२. "तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव। स ह संजिहान एव क्षत्तार मुवाच-अंगारे! सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति।' 'योनु

कथं सयुग्वा रैक्व' इति। 'यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनं सर्वं तदभिसमेति यत् किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति, यस्तद्वेद यत्सवेद। स मयैतदुक्त'' इति। स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय। तं होवाच, 'यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्च्छेति।' सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपविवेश। तं हाभ्युवाद 'त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व' इति। 'अहं ह्यरा ३ इति' ह प्रतिजज्ञे। स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय॥"

भावार्थः—तभी सपना टूटा, प्रभात होते ही राजा ने क्षत्ता मन्त्री को बुलवाकर उसे रैक्व की खोज हेतु भेजा। वह निराश लौटा तो फिर से भेजा। तब गाड़ी के नीचे दाद खुजाते हुए रैक्व को पाया। इस पर क्षत्तामंत्री प्रसन्न होकर लौट आया।

पद्यः—

इतने में ही सपना टूटा, सूर्योदय होने वाला था।
राजा व्याकुल हो गया, समय वह तनिक न खोने वाला था।११६।
शय्या तजते ही सर्व प्रथम क्षत्तामन्त्री को बुलवाया।
विस्तार सहित अपना सपना सारा ही उसको बतलाया।११७।
फिर आज्ञा दी-:हे मंत्रिप्रवर! ढूंढ़ो, वह रैक्व कौनसा है?
यह पता लगाओ-यश उसका कितना फैला है कैसा है?? १०८

दोहे:—

जब मंत्रीजी ढूंढ़कर वापस हुए निराश।
नृपवर से जाकर किया सविनय खेद प्रकाश॥२८॥
तब राजा के हृदय में जाग उठी फिर टीस।
(हंसों के संवाद ने गर्व दिया जो पीस)॥२९॥
बढ़ी विकलता और भी, नहीं मिला सन्तोष।
'पुनरपि ढूंढ़ो ध्यान से' यों बोला सह-रोष॥३०॥

प्रियछंदः—

क्षत्तामंत्री दूने श्रम से जुट गया खोज में ब्राह्मण की।
अब उसे कहाँ था चैन, बात भी कहाँ रही साधारण थी ॥
जब मनोयोग से खोज हुई तब एक दिवस, कालान्तर में।
दिख पड़ा कान्तिमय विरल व्यक्ति, एकाकी, निर्जन प्रान्तर में- १२०
गाड़ी के नीचे, छाया में बैठा वह दाद खुजाता था।
पर, तेजस्वी इतना कि सहज ही आकर्षण हो जाता था।१२१।
मंत्री ने जाकर निकट. 'नमस्ते' कहा, विनय से बैठ गया।
बस, यही सयुग्वा रैक्व, भाव यह उसके उर में पैठ गया।१२२।
फिर भी, सम्पुष्टि हेतु पूछा तो मनोकामना पूर्ण हुई।
(ऋषि नहीं मिल सकेंगे, ऐसी आशंका चूर्ण विचूर्ण हुई।१२३।)
अतिहर्षित होकर लौट पड़ा, नृप को सत्वर सूचित करने।
(मानो अचूक औषधि लेकर पहुँचा राजा का व्रण भरने।१२४।)

४. "तदु ह जानश्रु तिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कम-श्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे। तं हाभ्युवाद-'रैक्व! इमानि अनु म एतां भगवो देवतां शाधियां देवतां उपास्स इति।' तमु ह परः प्रत्युवाचाह-हा रे त्वा शूद्र! तवैव सह गोभिरस्त्विति' ॥"

भावार्थः—

राजा तुरन्त क्षत्तामंत्री के साथ बहुमूल्य उपहार लेकर रैक्व की सेवा में गया, उपदेश चाहा पर रैक्व ने उसकी विनय न मानी बल्कि ठुकरा दी।

पद्यः—

ज्यों ही सूचना मिली त्यों ही राजा प्रमोद से उछल पड़ा।
तत्काल कहा मंत्री से (जो आज्ञा पाने था निकट खड़ा) ।१२५।
'छः सौ गौवें, इक रत्नमाल, उत्तम रथ एक अभी ले लो।

उपहार उसे ये सब दूंगा, ले मुझे रैक्व के पास चलो ।१२६।'
मुनि की सेवा में पहुँच गये, नृप ने अर्पित उपहार किये ।
कर नमो निवेदन बैठ गये, कामना पूर्ति की आश लिये ।१२७।
राजा बोले-'हे रैक्व ! आप यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें ।
जिस कारण तेज आप में है वह कहना अंगीकार करें ।१२८।
किसकी उपासना करने से मिल गाया इतना यश, भगवन् !
वह देव कौनसा है जिसने दे दिया ब्रह्मर्चवस् ब्रह्मन् १२९ !!
दर्शन से ही मेरा सारा दानाभिमान है दूर हुआ ।
उपदेश दीजिये, मन मेरा है श्रद्धा से भरपूर हुआ ।१३०।'
यह सुनकर सहसा हंसे रैक्व फिर बड़ी उपेक्षा से बोले ।
'वह मूर्ख मैं नहीं हूँ जो लौकिक धन से ब्रह्म ज्ञान तौले ।१३१।
हे शूद्र ! (तामसिक दानी नृप !) ले जा वापस, जो कुछ लाया ।
ये नहीं चाहिये मुझे, मस्त एकाकी जीवन मन भाया ।१३२।'

कथा संगतिः—

दोहेः—

गये नृपति, सोचा कि यह न्यून रहा उपहार ।
इसीलिये लेकर अधिक, चलूँ दूसरी बार ।।३१।।
किन्तु कहीं वह भी नहीं होवे अस्वीकार । ❀
यह संशय उठता रहा मन में बारम्बार ।।३२।।

प्रिय छंदः—

सुख कभी न मिल पाता उनको जो संशय में ही रहते हैं ।
देखा राजा की पुत्री ने, श्रद्धेय पिता दुख सहते हैं ।१३३।

❀ इसे संस्कृत के नियमानुसार 'अस्स्वीकार' पढ़ना चाहिये अन्यथा छंदोभंग दिखेगा । ("ओ. प्रे.")

कारण जाना तब 'ज्ञानवती' वह कन्या नृप से यों बोली—
'हे पूज्य पिताजी! क्यों न आपने अब तक बात-गाँठ खोली।१३४।
उपहारों का ही एक भाग अब मुझे बनाकर ले चलिये।
संशय ज्वाला में वृथा आप मत यूँ तिलतिल करके जलिये।१३५।
वह दाद खुजाता, रोगी है, धनहीन और साधन विहीन।
पर आप दान दे दें मेरा, विद्या में है वह अदीन।१३६।
मैं उद्यत हूँ स्वेच्छा ही उसकी पत्नी बन जाने को।
चलती हूँ साथ आपके मैं शुचि ब्रह्मज्ञान दिलवाने को।१३७।
नृप ने हो अति प्रसन्न, उसको भेंटों में शामिल कर डाला।
हर्षित हो राजकुमारी ने ले ली निजकर में वर माला।१३८।
वह गाती गाती जाती थी, मन में फूली न समाती थी।
निज गायन के हर अक्षर से उत्सुक उमंग बिखराती थी।१३९।

गायनः—

मुझको आज निमन्त्रण आया।
क्या जानूँ किसने मुझ जैसी अकिंचना को है अपनाया मुझको आज०
कैसे यह सन्देश आ गया, कौन भर गया मुझमें मस्ती।
अरे पता भी नहीं दे गया, कहाँ वसी है उसकी बस्ती॥
हन्त, पहुँचना होगा कैसे कुछ भी नहीं समझ में आया॥१॥
बरबस पग बढ़ते जाते हैं, यंत्रचालिता मेरी काया।
यह मेरी ही भ्रान्ति चल रही अथवा आतिथेय* की माया॥
दूर कहीं से ध्वनि सुन पड़ती जैसे फिर से मुझे बुलाया॥२॥

---

* आतिथेय = मेजबान (जिसके घर कोई व्यक्ति मेहमान या अतिथि होकर आवे और जो मेहमानवाजी अर्थात् अतिथि सत्कार या आतिथ्य करे। (ओ. प्रे.")

बना शब्दवेधी शर सा यह मन मेरा दौड़ा जाता है।
कब तक यों ही लिये चलेगा बोल नहीं बिल्कुल पाता है॥
अहां, 'ओ३म्-प्रेमी सा मुझमें क्यों इतना आनन्द समाया ॥३॥

कथाप्रवाहः—

५. "तं हाभ्युवाद–'रैक्व ! इदं सहस्रं गवामयं निष्कोऽयम श्वतरीरथ इयं जाया ऽयं ग्रामो यस्मिन्नासे। अन्वेव मा भगवः शाधीति'। तस्याह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाच 'आ जहारे माः शूद्रा नेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति।' ते है ते रैक्व पर्णा नाम महावृषेषु यत्रा स्मा उवास तस्मै हो वाच॥"

भावार्थः—

राजा ने दूसरी बार जाकर १००८ गौएं, कई रत्नमालाएं, रथ एवं अपनी कन्या भेंट की और पुनः उपदेश के लिये विनय की तब रैक्व बोले कि अन्य तो सब ठुकरा देता परन्तु रमणी रत्न का तिरस्कार संभव नहीं है। यह कहकर सब स्वीकार किया और राजा का जामाता (जंवाई) बनकर उसे ब्रह्मज्ञान दिया राजा ने भी उन्हें अनेक ग्राम भेंट किये, रैक्व जहाँ बैठे थे वह गाँव तो रैक्व पर्णा नगरी के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया। (वह भी भेंट किया गया)।

पद्य:—

इस भाँति दूसरी बार नृपति जब गये रैक्व की सेवा में।
तब कन्या सहित भेंट भारी अर्पित की उनकी सेवा में।१४०।
फिर नम्र निवेदन किया कि भगवन्! ये सब अंगीकार करें।
अब तो कृपया ब्रह्मोपदेश मुझको देना स्वीकार करें।१४१।'
गंभीर गिरा से मुनि-बोले 'राजन्! मैं फिर ठुकरा देता।
पर कन्या रूपी रत्न दिया इसलिये सभी हूँ ले लेता।१४२।

[संयोग वशात् कुंवारा हूँ इस कारण पाणि ग्रहण करता ।
इसके कर से वर माल पहिन, मैं भी उर से इसको वरता ।१४३।]

कथा संगतिः—

बदला सारा ही दृश्य तुरत, विधिवत् विवाह संपन्न हुआ ।
वैदिक मन्त्रों की उठी गूँज सब वातावरण प्रसन्न हुआ ।१४४।
राजा गद्गद् हो यों बोला-यह ग्राम समूह आपका हो ।
(दस दस कोसों तक आसपास फैला सब क्षेत्र आपका हो) ।१४५।

दोहः—

गाड़ी के नीचे जहाँ बैठे थे मुनिराज ।
उसके सहित सुक्षेत्र का मिला उन्हीं को राज ॥३३॥
मुनिवर के ही नाम पर नगरी का शुभ नाम ।
हुआ 'रैक्वपर्णा' वहाँ बनने लगे सु--धाम ॥३४॥
इस छोटे नवराज्य की प्रजा आ गई सर्व ।
जंगल में मंगल हुआ, यह अपूर्व था पर्व ॥३५॥
भक्ति भाव से ओ३म् का धर-कर पावन ध्यान--
राजकुमारी के सहित सबने गाया गान ॥३६॥

गायन❀

भक्ति करें, भक्ति करें, भक्ति करें हम ।
सत्येश ओ३म् की अनन्य भक्ति करें हम ॥
मुक्ति वरें, मुक्ति वरें, मुक्ति वरें हम ।
वेदोक्त कर्म कर वरेण्य मुक्ति वरें हम ॥

❀ कथावाचक इस गायन को सही-सही तर्ज से यथासुविधा पूरी पंक्तियाँ वा अंशतः बुलवाते हुए) कथा के समस्त श्रोता नारिनर से सम्मिलित रूपेण अपने साथ गवावे । ("ओ. प्रे.")

(भक्ति करें हम, अनन्य भक्ति करें हम)
आओ सुसाधकों ! सुपन्थ सत्य का गहें।
"जाओ बुराइयों" समन्यु हम यही कहें॥
अपनी दशा सुदिव्य बनाने की दिशा में-
उत्साह से, सतत, अमन्द युक्ति करें हम।
युक्ति करें, युक्ति करें, युक्ति करें हम
अमन्द युक्ति करें हम ॥१॥
वातावरण यहाँ परम पुनीत बन सके।
गाता चरण बढ़े, सदा वसन्त मन सके।
पहले स्वजीवनों में ओ३म् प्रेमी हम बनें-
फिर विश्वजनों में सुधन्य शक्ति भरें हम।
शक्ति भरें, शक्ति भरें शक्ति भरें हम-
सुधन्य शक्ति भरें हम ॥२॥
भक्ति करें, भक्ति करें, भक्ति करें हम-
अनन्य भक्ति करें हम ॥

[कथा संगति (गद्य)]

इस प्रकार आनन्दमय वातावरण में रैक्व ने गृहस्थाश्रम प्रारम्भ किया। राजा उपदेश ग्रहण करने के पश्चात् कन्या को रैक्व के पास छोड़कर अपनी राजधानी के प्रति वापस लौटे किन्तु अब वे ब्रह्मज्ञानी बन चुके थे।

पद्यः—

दोहे:—योगीराजा से हुए राजायोगी भव्य।
दद्रु मिट गई, रैक्व का तन बन गया प्रदिव्य ॥३७॥
सत्य देव शिव ओ३म् का दिया नृपति ज्ञान।
तब नृप के सन्तोष का हो कैसे अनुमान !! ॥३८॥

ज्ञानी बन लौटे नृपति, न था दर्प लवलेश ।
जामाता ऋषि रैक्व ने दिया परम निर्देश ॥३९॥
कन्या के द्वारा हुआ राजा का कल्याण । ❀
सभी रूप में नारि से नर पाता परित्राण ॥४०॥

आख्यान समाप्तिः—

धर ध्यान सत्यनारायण का, उर की आँखें मुदमय खोलें।
तीसरा आख्यान समाप्त हुआ सब ओ३म् देव की जय बोलें ।१४६।

जयघोषः—

[प्रथमाख्यान की समाप्ति पर लिखितों के अनुसार]

(इति तृतीयाख्यानः)

॥ अथ चतुर्थाख्यानः ॥

(छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक १ खण्ड १०)

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः । ("आर्याभिविनय" द्वि. प्र. से)

[आरम्भिक–उक्ति]

जिसके आधार उपनिषद् हैं वह कथा सुनाई जाती है।
आख्यानों द्वारा ओ३मृदेव की गरिमा गाई जाती है ।१४७।
शुभनाम सत्यनारायण भी उस निराकार का तुम जानो ।
चौथा आख्यान सुनो जिसमें उसकी ही महिमा पहचानो ।१४८।

❀यद्यपि उपनिषद् में केवल 'कन्या' का अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख है तथापि हमने इस आख्यान में तनिक विस्तार से वर्णन कर दिया है–प्रियछंद क्र. १३४ में 'ज्ञानवती' नाम भी लिख डाला है। वस्तुतः यह सब कुछ कल्पना प्रसूत है। इतना ही क्यों, "रैक्वपर्णा की रानी या स्वयंवरा ज्ञानवती" नामक पद्योपन्यास भी हम रच चुके हैं जिसके परिशिष्ट में यह तृतीयाख्यान पूरा ही उद्धृत है। ("ओ. प्रे.")

वेदमन्त्रः—

ओ३म् पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तुमयि श्रुतम् ॥

(अथर्ववेद काण्ड १ मंत्र २)

पद्यानुवादः—

वाचस्पते ! ओ३म् परमेश्वर ! मन में बारम्बार आइये ।
मुझे निरन्तर देवभाव के शुभ प्रकाश में ही रमाइये ॥
वसोष्पते ! हे भगवन् ! मेरी गति मति में शुचिता बसाइये ।
वेदों का उपदेश न भूलूँ ऐसी मम क्षमता बढ़ाइये ॥

विशेष निर्देश:—इस स्थल पर परम पवित्र गायत्रीमन्त्र अर्थात् "ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥" (यजुर्वेद ३६।३, ऋग्वेद ३।६२।१०) इस पावन गुरुमन्त्र का सामूहिक समुच्चारण हो । तदनन्तर इसके पूरे (ओ३म्प्रेमी कृत पद्यानुवादमय) गायन में से महाव्याहृतियों के अर्थवाली निम्नांकित पद्यपंक्तियाँ सब मिलकर सस्वर गावें:—

गायनांश:—

"ओ३म् दयामय निर्विकार शिव
'भूर्भुवः स्वः' तुम प्यारे ।
अथवा हो सच्चिदानन्द घन,
कविजन वर्णन कर हारे ॥
प्राणों से भी प्रियतर प्रभुवर !
'भूः' इसी से तुम्हें कहें ।
'भुवः' अपान रूप में हरते
सुजनों के संकट सारे ॥ओ३म् दयामय०
'स्वः' तुम व्यापक सदा व्यान सम
सर्वनियन्ता सौख्यस्वरूप ।

सबके अधिष्ठान हो भगवन् !
सबको रहते भी धारे ।ओ३म् दयामय॰"

आख्यान आरम्भः—

१. "मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जायायोषस्तिर्ह चाक्रायणः इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास । ते हेभ्यं कुल्माषान्खादन्त विभक्षे । तं हो वाच-नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति । एतेषां मे देहीति हो वाच । तान स्मै प्रददौ । हन्तानुपानमिति । उच्छिष्टं वै मे पीतं स्यादिति हो वाच । न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमां न खादन्निति होवाच कामो म उदपानमिति । स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार साग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिग्रह्यनिदधौ ॥"

भावार्थः—

प्राचीन काल में एक समय उषस्ति चाक्रायण नामक ऋषि निर्धन होकर जीविका हेतु पत्नी सहित घूमते-फिरते इभ्य ग्राम में जा टिके, जहाँ टिड्डी से फसलें नष्ट हो चुकी थीं । एक नागरिक उन्हें कुल्माष (उर्द जैसा एक अनाज विशेष) खाता हुआ दिखा, उन्होंने माँगे, उसने कहा ये मेरे जूंठे हैं' पर उषस्ति भूखे थे अतः वे ही ले लिये । तब उसने पानी भी देना चाहा पर ऋषि ने जूंठा बतलाकर वह न लिया । उसने कहा कुल्माष भी तो जूंठे थे' ऋषि बोले कि 'वे अनिवार्य थे' जल सर्वत्र सुलभ है ।' फिर बचे हुए कुल्माष, पत्नी के लिये ले गये पर वह अच्छी भिक्षा पा चुकी थी अतः उसने वे रख छोड़े ।

पद्य:—

उपनिषद् काल की घटना है जब ऋषि उपस्ति धनहीन हुए ।
जीविका चलाने के साधन घटने से वे अतिदीन हुए ।१४९।

तब ग्राम स्वयं का छोड़ दिया, पत्नी को संग ले निकल पड़े ।
(सब कष्ट सहे जो उन दोनों को मिले मार्ग में बड़े बड़े ।१५०।)
चलते चलते जा टिके एक नगरी में जो थी क्षतिग्रस्ता ।
(वह 'इभ्य' नामिका थी बस्ती, दुष्कालमयी अतिसंत्रस्ता ।१५१।)
टिड्डी दल ने फसलें सारी जन-जन की, चौपट कर दी थीं ।
निज सेनायें निर्धनता ने बर-बस घर-घर में भर दी थीं ।१५२।
दोनों (पति-पत्नी) अलग-अलग भिक्षा के हेतु विचरते थे ।
पाते न अन्न थे क्योंकि लोग बहुधा भूखों ही मरते थे ।१५३।
फिर भी कुछ समय बाद पति को दिख पड़ा नागरिक एक वहाँ
जो केवल कुल्माष खा रहा, अन्य अन्न था प्राप्त कहाँ ।१५४।
भूखे उपस्ति ने उस ही से माँगा अपने खाने को भी ।
वह बेचारा यों बोल उठा– कुल्माष मम निकट हैं ये ही ।१५५।

इनको भी इसी वस्त्र में से ले लेकर मैंने खाये हैं ।
इसीलिये हुए मेरे जूंठे, क्या तुमको ये मन भाये हैं ।१५६।।
ऋषि ने यह उत्तर दिया कि 'हूँ मैं तो क्षुधार्त्त, ये ही लूंगा ।
जब प्राणों पर बन आई है तब कैसे कुछ भी सोचूंगा !! ।१५७।
यह सुन, दे दिये नागरिक ने जूंठे कुल्माष, विनत होकर ।
खाये उपस्ति ने आधे से कुछ अधिक तुरन्त निरत होकर ।१५८।
कुछ बुझी भूख तो शेष रहे कुल्माष वस्त्र में रख छोड़े ।
(करके पत्नी का ध्यान, उधर ही मोड़े संस्मृति के घोड़े ।१५९।
पर तभी नगरवासी बोला, 'हे ब्रह्मन ! ले लो यह जल भी ।
ऋषि बोले–"यह तो जूंठा है, रहने दो भिक्षा निर्जल ही" ।१६०।
विस्मित हो, कहा नागरिक ने, 'क्या जूंठे थे कुल्माष नहीं ?
बोले उपस्ति, 'हे सभ्य ! तुम्हें आपत्ति धर्म है ज्ञात नहीं ।१६१।
कुल्माष नहीं यदि मैं खाता, तो भय था मृत्यु मुझे खाती ।
जलपान सुलभ सर्वत्र मुझे कुल्माष नहीं यों मिल पाती ।१६२।

जब आपद्धर्म समझ लोगे तब शंका सब मिट जावेगी ।
यह संशयवृत्ति विदा होगी, दुविधा सारी हट जावेगी ।१६३।'

दोहे:—

यह कह ऋषिवर चल दिये निज डेरे की राह ।
दिये शेष कुल्माष वे पत्नी को सोत्साह ।।४१।।
पर उसको था मिल चुका थोड़ा उत्तम अन्न ।
जिसको खाकर हो सकी वह सुतृप्ति-सम्पन्न ।।४२।।
इस कारण उसने रखे ज्यों के त्यों कुल्माष ।
अगले दिन उपयोग की मन में धर अभिलाष ।।४३।।

कथा संगति:—

निज निज बिस्तर पर किया विभु को समुद प्रणाम ।
(नित्य, शयन से पूर्व, का यह था पावन काम) ।।४४।।
यजुर्वेद के मंत्र पढ़, किया अर्थ का गान ।
इस प्रकार आनन्द का मिला द्विगुण वरदान ।।४५ ।

(शयनवेला में पठनीय छः वेदमन्त्र)

ओ३म् यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ।।" "ओ३म्येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे० ।।" "ओ३म् यत्प्रज्ञान-मुतचेतोधृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजा सु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्मक्रियते तन्मे० ।।" "ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्य-त्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे० ।।" "ओ३म् यस्मिन् ऋचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथना भाविवाराः । यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे० ।।" "ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ।।"

(यजुर्वेद, अध्याय ३४, मंत्र १, २, ३, ४, ५, ६)

[उक्त छहों मन्त्रों का गेय पद्यानुवाद, एक गायन में]

गायनः—

मन शिव संकल्प सदैव करे, यह वर दो, मेरे दानी।
कर दो अनुकम्पा बन जाऊँ मैं भी इक अमर कहानी॥
है जागृति में जो दूर दूर तक जाता।
सुप्तावस्था में स्वप्निल दौड़ लगाता॥
जो है इन्द्रियगण का आलोक प्रदाता।
चरवाहा-सा बन, गोचर में चरवाता॥
ऐसा महान् मन, पावन बनकर पावे
मति कल्याणी॥ यह वर दो० ॥१॥
जिसके द्वारा कर्मज्ञ मनीषी सारे,
उत्तमता के आदर्श बन सके प्यारे।
जगवन्द्य यक्ष सम अनुपम गोरव धारे,
जिसने सारे यजनीय कार्य विस्तारे
वह मन बन जावे मम जीवन रण
का सुचतुर सेनानी। यह वर दो० ॥२॥
धृति, संस्कृति और विवेक थमे हैं जिसपर,
ज्योतित जिससे है मानव का उर अन्तर
परिग्रहण करे त्रयकालवृत्त अविनश्वर,
श्रद्धा कर दे जो भक्त जनों की दृढ़तर॥
जिसके बिन कोई कर्म न हो यह मन
की अमिट निशानी॥ यह वर दो० ॥३॥
रथ नाभि में लगे होवें जैसे आरे,
हैं परमज्ञान यों इसमें गुंफित सारे।
जिसका आश्रय पाकर ही चित्त विचारे,
जो बुद्धि और अहमिता रूप नित धारे॥

इतना सुदिव्य मन, पूर्ण बने,
पा भव्य भावनारानी ॥ यह वर दो० ॥।॥
सारथी चतुर निजकर में वागें लेकर,
द्रुतगामी अश्व चलाता है ज्यों पथ पर
मन भी ऐसे हो तन का रथ ले सत्वर, हांकता निरन्तर चलत
वलवत्तर ॥
उस मन को शिव संकल्पयुक्त कर दो हे अन्तर्ज्ञानी ॥
यह वर दो मेरे दानी ॥५॥

दोहे:—

बीती वह रजनी भली, हुआ सुरम्य प्रभात ।
विहंग प्रभाती गा चले, खिले विमल जलजात ॥४६॥
निराकार प्रभु ओ३म् का उर में धरकर ध्यान ।
पति पत्नी मिल गा उठे भक्ति भाव मय गान ॥४७॥
पहले तो ऋग्वेद के मन्त्र पढ़े हर्षाय ।
फिर गाया वह गान जो सत्याशय दर्शाय ॥४८॥

(प्रातः स्मरणीय वेदमन्त्र-पंचक)

"ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुतरुद्रं हुवेम ॥"
'ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥"
"ओ३म् भगप्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवाददन्नः । भगप्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम ॥" ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥" "ओ३म् भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जो हवीति स नो भगपुर एता भवेह ॥"

(ऋग्वेद, ७/४१/ १, २, ३, ४, ५)❀

उक्त पांचों मन्त्रों का ओ३म् प्रेमीकृत स्वतंत्र (गेय)

पद्यानुवादः—

गायनः—

परम ज्योति ! तेरी महिमा को--
पितरों सम ही हम गाते हैं
इस प्रभात में महाप्राण ! हम उर से तुझको अपनाते हैं ।।
पुण्य प्रेरणा पाकर प्यारे ! पाप पंक से हों हम न्यारे ।
सहज सौम्य ! जीवन धन बनजा हे महिमामय ! सुभग सहारे ।।
शरणागत प्रतिपालक ! तेरी श्रेय शरण में हम आते हैं ।।१।।
सविता-सोम-सितारे सिरजे,
सकल सृष्टि का तू है स्वामी ।
तेजोमय ! तेरी जय जय हो, जन मन का तू अन्तर्यामी ।।
हे संसेव्य ! सर्वदा शुचितर ! तुझे अशुचि मन कब पाते हैं ।। २।।
सत्य स्वरूप ! सुज्ञान प्रदाता, कृपासिंधु, ऐश्वर्य विधाता ।
तेरे गुण अनुसरण करें हम रखें सदा सुजनों से नाता ।।
तू सब सुख का सरस स्रोत है श्रुति से यह सुनते आते हैं ।।३।।
वर दे हम श्रमशील सुखी हों, नहीं भक्ति में बहिर्मुखी हों ।
सुमति सदा हमको अपनावे, बनें न अज्ञानी, न दुखी हों ।।
हम श्रद्धा-सुमनों को सादर सेवा में तेरी लाते हैं ।।४।।
हे भजनीय ! महान् प्रतापी ! देव ! दिव्यता की भिक्षा दे ।
तेरी शुभ रचना का कण-कण, हमें श्रेष्ठता की शिक्षा दे ।।

❀महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि के गृहाश्रम प्रकरण में इन पांचों मंत्रों को प्रातः स्मरण योग्य मन्त्रों के रूप में ही विनियुक्त करके शब्दार्थ भी लिखा है और यह निर्देश दिया है कि जागते ही सर्वप्रथम इन्हें पढे फिर शौचादि के लिये जावे । (ओ. प्र.")

आज उषा वेला में तुझको नत शिर होकर हम ध्याते हैं ।।५।।
परम ज्योति ! तेरी महिमा को ०

प्रियछंदः—

'प्रातः अग्नि प्रातः इन्द्र" इत्यादि वेदमन्त्रों के ही–
भावार्थयुक्त काव्यानुवाद यों गाकर मस्त बने वे भी ।१६४।
जब उक्त पाँच मन्त्रों द्वारा प्रातः संस्मरण किया उत्तम ।
तब अकथनीय आन्तरिक सौख्य उन दोनों ने पाया अनुपम ।१६५।

कथाप्रवाहः—

२. "सह प्रातः सञ्जिहान उवाच 'यद् बताऽन्नस्यलभेमहि, लभेमहि धनमात्रां राजाऽसौ यक्ष्यते, समा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेती ।' तं जायोवाच 'हन्तपते ! इम एव कुल्माषा' इति । तान् खादित्वाऽमुंयज्ञं विततमेयाय ।।"

भावार्थः—

प्रभात में उषस्ति ने पत्नी से कहा कि यदि खाने को कुछ मिले तो मैं पास ही जो बड़ा यज्ञ होने वाला है उसमें जा सकूं और अच्छी दक्षिणा पा सकूं । वह बोली कि कुल्माष ही बचे हैं । इस पर उन्हें ही खाकर ऋषि यज्ञ में गये ।

पद्यः—

सन्ध्या वन्दन से निबट चुके तब ऋषि ने ऐसे वचन कहे–
'प्रियतमे ! बिना भोजन के हैं मम प्राण आज फिर सूख रहे ।१६६
यदि थोड़ा सा भी मिले अन्न तो अपनी क्षुधा मिटाऊं मैं ।
होकर सशक्त, जीविका हेतु ऋत्विक् स्वरूप में जाऊं मैं ।१६७।
इक वृहद् यज्ञ सन्निकट प्रान्त में राजा करने वाला है ।
यजमान बड़ा श्रद्धालु, दक्षिणा भारी देने वाला है ।१६८।
मुझको निज पर विश्वास कि ब्रह्मा वहाँ बनाया जाऊंगा ।
अपनी दरिद्रता भाग सके इतना पुष्कल धन पाऊंगा १६९।'

भार्या बोली -'कल जितने भी कुल्माष आप ले आये थे।
वे ही सब रखे सुरक्षित हैं मैंने न तनिक भी खाये थे।१७०।'
सत्वर उषस्ति ने कहा कि 'हे कल्याणि ! उन्हें तुम ले आओ।
बल उनसे पाकर अभी पगों से कहूँ-यज्ञ तक ले जाओ।१७१।
फिर आपत्काल आज आया, जूंठे कुल्माष खा सकूंगा।
अन्यथा तुम्हीं कहदो कि अभी कैसे मैं कहीं जा सकूंगा।१७२।
यदि नहीं गया तो कौन मुझे दक्षिणा यहाँ लाकर देगा।
हाँ पहुँच सकूं तो हर कोई मम चरणों पर सिर धर देगा।१७३।
इतना सुनकर हर्षित पत्नी जूठे कुल्माष उठा लाई।
खा उन्हें किया जलपान तभी ऋषि में संस्फूर्ति शक्ति आई।१७४।

३, तत्रोद्गातृनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोप विवेश। स ह प्रस्तो तार मुवाच-'प्रस्तोतर्! या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां वेद विद्वान् प्रस्तोष्यसि, मूर्धाते विपतिष्यतीति' एवमुद्गातारमुवाच, एवमेव प्रतिहर्त्तारमुवाच, ते ह समारतास्तूष्णीमासांच क्रिरे॥"

भावार्थ:—

यज्ञ में पहुँचकर ऋषि उस स्थान पर बैठ गये जो आस्ताव कहलाता है और जहाँ बैठे हुए उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता, ये तीनों अपना अपना साम भाग गाते हैं। उन तीनों से ऋषि ने कहा कि आपके जो जो यज्ञकर्म हैं वे वे उनके देवता को जाने बिना ही कराने पर आपका सिर गिर जावेगा (लज्जित होना पड़ेगा) इस पर वे सभी चुप-चाप यज्ञ से हटकर मौन हो गये।

पद्य:—

चल पड़े तुरन्त यज्ञ स्थल को, जा पहुँचे ऐसे अवसर पर-
था होने को प्रारम्भ यज्ञ; प्रस्तोता साध रहा था स्वर॥१७५॥

उन ऋत्विग्जन के निकट बैठ, ऊंचे स्वर से उषस्ति बोले-
'तुम प्रस्तुति-भाजन देव न पहिचाने हो, प्रस्तोता भोले !! ।१७६।
फिर भी, संस्तवन करोगे तो निश्चय ही सिर गिर जाएगा।
(तुमको लज्जा से नत शिर हो, पीछे हटना पड़ जाएगा') ।१७७।
उद्गाता, प्रतिहर्त्ता से भी; ऋषि ने ऐसे ही वचन कहे ।
पर वे कोई कुछ कह न सके, सर्वथा मौन ही गहे रहे ।१७८।
हाँ, यज्ञकर्म से विरत हुए; (तब राजा मन में घबराया।
ऋषिवर उषस्ति की सेवा में आसन पर से उठकर आया) ।१७९।

४. "अथ हैनं यजमान उवाच-'भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीति' 'उषस्तिरस्मि चाक्रायण' इति होवाच। स होवाच-'भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैशिषं, भगवतो वा अहमवित्त्याऽन्यानवृषि' भगवां स्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्ह्येतएव समतिसृष्टाः स्तुवताम्। यावत्त्वेभ्योधनं दद्यास्तावन्मम दद्या इति। तथेति ह यजमान उवाच ॥"

भावार्थः—यजमान ने ऋषि का परिचय जानने पर कहा कि खोज पर आप न मिले तब मैंने इन अन्यों को वरण किया। अब सारा यज्ञकार्य सम्हालिये। ऋषि ने उतनी ही दक्षिणा देने को कहा जितनी सबको दी जावे। राजा ने मान्य किया, ऋषि यज्ञ कराने लगे (तभी प्रस्तोता प्रभृति ने प्रश्न पूछे)।

पद्य:—

पहले तो कहा 'नमस्ते'; फिर पूछा चरणों पर सिर धर कर-
'हे भगवन्! दें परिचय अपना, मुझपर अत्यंत अनुग्रह कर' ।१८०।
परिचय पाकर बोला राजा-'मैंने तो खोज कराई थी।
पर कहीं नहीं मिल सके आप, बस यही सूचना पाई थी ।१८१।
यदि आप मिलें होते पहले, तो 'ब्रह्मा' पद अवश्य देता।
मैं नम्रभाव से आग्रह कर हे भगवन्! सभी कार्य लेता ।१८२।

दोहा:—

यह मेरा सौभाग्य है, स्वयं पधारे आप ।
अब यह यज्ञ सम्हालिये सत्वर, हे निष्पाप' ॥४९॥

प्रियछंद:—

कह 'तथास्तु' पहले तो ऋषि ने ज्यों का त्यों आवेदन माना।
पर उसी समय कुछ सोच समझकर समुचित संशोधन ठाना।१८३।
बोले कि 'मैं करूँ निर्देशन, इनको ही कृत्य कराने दो ।
सब ऋग्विग्जन को आने दो, दक्षिणा यथोचित पाने दो।१८४।
मुझको न कुछ अधिक लेना है, दे देना बस उतना ही धन-
जितना जितना ऋत्विक् हरेक पावे दक्षिणा द्रव्य पावन।१८५।
[निर्धनता में भी नीति-प्रीति यह लख आदर सब करते थे।
ऋषिवर उषस्ति का दर्शन कर श्रद्धा से निज उर भरते थे] ।१८६।
राजा ने 'एवमस्तु' कहकर सादर आमंत्रित उन्हें किया।
बस वृहद् यज्ञ के संचालक (ब्रह्मा) का गुरुपद भव्य दिया।१८७।

[कथा संगति (पद्यमयी)]:—

यों पुनः यज्ञ का शुभारम्भ जिस समय कि होने वाला था।
बस बढ़ा तभी प्रस्तोता भी, अवसर कब खोने वाला था।१८८।
पूछा कि 'मुने ! पहले मुझको प्रस्तुति भाजन वह देव कहें।
जिसको न जानकर मुझ समान प्रस्तोता लज्जा भार सहें।१८९।
उद्गाता, प्रतिहर्त्ता ने भी ऐसा ही ऋषि से प्रश्न किया।
तब एकमेव श्री ओ३म् देव का मुनिवर ने उपदेश दिया।१९०

[कथा संगति (गद्यमयी)]

ऋत्विग्जन को उपदेश करते हुए उनके प्रश्नों के उत्तर में उषस्ति यों कहने लगे—"ओमित्येतदक्षरं उद्गीथं उपासीत ।. ओ३म् इतिह उद्गायति । सर्वं तस्योपव्याख्यानम्" (छान्दोग्य० १।१) "ओ३म् इति एतद् अक्षरं इदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम् । भूतं

भवद् भविष्यदिति सर्वं ओंकार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदपि ओंकार एव।" (माँडूक्य ० १।१) "ओ३म् इति सामानि गायन्ति, ओ३म् इति अध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओ३म् इति अग्निहोत्रं अनुजानाति !" (तैत्तिरीय ० शिक्षावल्ली ८)

"स ब्रह्मा स विष्णुः स रूद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्। स इन्द्रस्य कालाग्निस्स चन्द्रमाः।"

(कैवल्य उपनिषद्, सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम समुल्लास) "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्सम श्चाभ्याधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥' (श्वेताश्वेतरोपनिषद्, अ० ६ मंत्र ८) सत्य ज्ञानं सात्विकं धर्मज्ञानं राजसं तिमिरान्धं तामसमिति" (शारीरिकोपनिषद् श्लोक ८) सर्वव्यापी सोऽचिन्त्योऽवर्ण्यश्च, पुनाति अशुद्धानि अपूतानि इत्येष परमात्मा पुरुषो नाम ॥" (अथर्ववेदीय आत्मोपनिषद्❀ खंड ३, श्लोक ११)" "हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् तत्त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्मायदृष्टये ॥" (ईशोपनिषद्, श्लोक १५) "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् योऽसावादित्ये पुरुषो (सोऽसावहम्। ओ३म् खम्ब्रह्म ॥" (यजुर्वेद, अध्याय ४०, मंत्र १५)❀❀

❀❀ विस्तार भय से इन सब दिव्य वचनों के अर्थ नहीं लिखे गये हैं। जिज्ञासु नारि-नर कृपया इनके प्रामाणिक भाष्य देखें। कथावाचक भी स्वमति से ठीक-ठीक अर्थ सुना सकते हैं। (":ओ प्रे.")

❀ हमने शारीरिक एवं आत्मोपनिषद् का स्वतंत्र पद्यानुवाद कर दिया है। इच्छुक महिला पुरुष यथास्थल उन पद्यानुवादों में इन वाक्यों के अर्थ देख सकते हैं, अस्तु। ("ओ. प्रे.")

[कथा संगति (पद्यमयी)]

पद्य:—

कह दिया अन्त में उन सबसे—'यह ओ३म् देव ही सत्यदेव ।
जो यज्ञकार्य में विविध भाँति विधिवत् उपास्य है एकमेव ।१९१।
उसकी उपासना का प्रकार वेदोक्त रीति से बतलाया ।
ऋत्विग् कर्मों का रहस्य भी संक्षिप्त रूप में जतलाया !१९२।)
यजमान सहित सब ऋत्विज्गण सन्तुष्ट और कृत कृत्य हुए ।
(ऐसा लगता था मानो वे ऋषि के अनुचर वा भृत्य हुए) !१९३।
अनुशासन पालन करवा के वह यज्ञ समाप्त करा छोड़ा ।
दक्षिणा यथोचित पा उषस्ति ने इभ्यग्राम को मुँह मोड़ा ।१९४।
लेकर भार्या को संग* वहाँ से निज नगरी में पहुँच गये ।
आनन्द सहित जीवन व्यतीत करने अपने घर पहुँच गये ।१९५।

[आख्यान समाप्ति]

धरध्यान सत्यनारायण का उर की आँखें मुदमय खोलें ।
चौथा आख्यान समाप्त हुआ, सब ओ३म्देव की जय बोलें ।१९६।

जयघोष:—(प्रथमाख्यान की समाप्ति पर लिखे हुए अनुसार ही)

(इति चतुर्थाख्यान:)

।। अथ पंचमाख्यान: ।।

(प्रश्नोपनिषद्, षष्ठ प्रश्न)

"ओ३म् नमो नमः सर्व शक्तिमते जगदीश्वराय ।"

(महर्षि दयानन्दजी कृत 'गोकरुणानिधि' से)

---

*भले ही उपनिषद् में उल्लेख न हो और हमने भी कथा सगति में जिक्र चाहे न किया हो परन्तु हमारा दृढ़तर अनुमान है कि यजमान के साथ उसकी पत्नी भी यज्ञ में अवश्य बैठी होगी । इस अनुल्लेख के लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं । ("ओ. प्रे.")

आरम्भिक उक्तिः—
जिसके आधार उपनिषद् हैं, वह कथा सुनाई जाती है।
आख्यानों द्वारा ओ३म्देव की गरिमा गाई जाती है।१९७।
शुभनाम सत्यनारायण भी उस निराकार का तुम जानो।
पंचम आख्यान सुनो जिसमें उसकी ही महिमा पहिचानो।१९८।

वेदमन्त्रः—
ओ३म् शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा माहिंसीः। निवर्तयाम्यायुषे अन्नाद्याय प्रजननाय-रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ (यजु० ३।६३)

गेय पद्यानुवादः—
शिव है नाम तुम्हारा प्रभुवर! नमो नमस्ते बारम्बार।
स्वधिति शक्ति के स्वामिन! उर से हम करते आदर सत्कार॥
हे श्रद्धेय पिता! हे भगवन्! तुमसे हमको मिले दुलार।
हिंसित होंवे नहीं तनिक भी, तुम्हें रिझावें सभी प्रकार॥१॥
हम अन्नादि भोग्य सब पावें, मिले आयु में शुभ विस्तार।
प्रजनन हों निर्विघ्न सर्वदा, सन्तति हों सद्गुण भंडार॥२॥
रायस्पोष कहाने वाला पोषक वैभव जो सुख-सार।
वह सुवीरता का संगी रह दिला सके पावनफल चार॥३॥
ओ३म्! तुम्हारी सेवा में हम सौंपें निज आचार विचार।
सिद्धियुक्त हों देव, हमारे सब परमार्थ और व्यवहार॥४॥
नमो नमस्ते बारम्बार॥

गायनः—
प्रेम से प्रिय ओ३म् की हम प्रार्थना, आओ, करें।
स्नेहसागर में डुबोकर देह गागर को भरें प्रार्थना, आओ, करें॥
भीतिहर वह प्रीतिकर है अर्यमा अविकार है।
हों अभय हम भी, अनय छोड़ें, विमलता को वरें।१॥

याचना से पूर्व कर लें श्रम यथासामर्थ्य हम ।
तब कृपा का हाथ दीनानाथ भी हम पर धरें ॥२॥
वह 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' की वैदिक विनय ।*
आचरण से प्राण पावे; दैन्यदानव सब मरें ॥३॥
पूर्ण श्रद्धावान् बन अर्चन करें भगवान् का ।
तो विषम-से विश्वनद को हम सुगम करके तरें ॥४॥
प्रार्थना, आओ, करें ॥

आख्यान आरम्भः—

१. "अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ-'भगवन ! हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो-मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत्-'षोडशकलं भारद्वाज ! पुरुषं वेत्थ ?' तमहं कुमारमब्रुवं 'नाहमिमं वेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वा एवपरिशुष्यति यो अनृतमभिवदति तस्मान्नाहर्म्यनृतं वक्तुम्' स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वाऽसौ पुरुष इति' ।"

[कथासंगति हेतु यहाँ थोड़ा सा पूर्व प्रसंग भी पद्य रूप में स्वमति से प्रस्तुत किया जाता है जो यों है]

दोहे:—

हुए पुरातनकाल में पिप्लाद ऋषिराज ।
ब्रह्म ज्ञानियों का उन्हें सब कहते सिरताज ॥५०॥
आते थे जिज्ञासुजन उनसे लेने ज्ञान ।
बड़े-बड़े विद्वान भी पाते विद्यादान ॥५१॥

प्रियछंद:—

छः मनीषियों ने मिल-जुलकर उनकी सेवा में गमन किया ।
हो समित्पाणि श्री चरणों में अतिभक्ति भाव से नमन किया १९९।

---

*यजुर्वेद के ३६ वें अध्याय के २४ वें मंत्र का अंश । ('ओ. प्रे.')

कर में समिधायें लिखते ही ऋषि समझ गये, जिज्ञासा है।
(यह नियत चिह्न बतलाता था, इनको सद्ज्ञान पिपासा है।२००
अभिवादन की वैदिक विधि से निज परिचय थे देते जाते।
वे छहों मुदित मन होकर शुभ आशिष थे लेते जाते।२०१।
थे सबसे आगे खड़े सुकेशा, भारद्वाज गोत्र वाले।*
उनके पीछे थे सत्यकाम जो शिवि के सुत, सद्गुण वाले।२०२।
फिर सौर्य पुत्र थे गार्ग्य और अश्वल के सुत कौशल्य खड़े।
वैदर्भी भार्गव तथा कवंधी कात्यायन विद्वान् बड़े।२०३।
इन सबको यह आदेश दिया ऋषि पिप्पलाद ने सर्वप्रथम।
'तुम एक वर्ष तक यहाँ रहो, वन तपोनिष्ठ रखकर संयम।२०४।
जब श्रद्धा ब्रह्मचर्य से रह, यह समय समाप्त यहाँ करलो।
तब प्रश्न यथेच्छ पूछ पाओ, पर पहले यह तप तो वर लो।२०५।
फिर भी, यदि हमें ज्ञात होगा तो उत्तर तुमको दे देंगे।
तुम समझ सके या नहीं, परीक्षा भी तुरन्त ही ले लेंगे।२०६।

दोहे:—

आज्ञापालन में रहे वे संवत्सर एक।
निश्चय ही उनमें बढ़ा तेज और सुविवेक।।५२।।
हुए कबन्धी अग्रणी जब पहुँचे इस बार।
खड़े सुकेशा अन्त में, रहे मध्य में चार।।५३।।
इस क्रम से ही प्रश्न भी करते गये सुजान।
तोष जनक उत्तर मिले, बढ़ा विमल विज्ञान।।५४।।

---

*यह बड़ा ही सुखद संयोग है कि हमारा भी गोत्र 'भारद्वाज है।। कथा में इसी आख्यान को रखने का एक कारण यह भी है, वैसे केवल गोत्र मिलने का कुछ अधिक महत्व तो है नहीं, 'कहाँ राजा भोज कहाँ भुजवा तेली!' ("ओ. प्रे.")

प्रियछंद:—

सबसे पहले जब पहुँचे थे तब आगे भारद्वाज रहे।
प्रश्नोत्तर उन्हीं 'सुकेशा' के, हैं केवल जाते यहाँ कहे।२०७।

(आख्यान का कथा-क्रम)

ऋषि से यों कहा सुकेशा ने-'हे भगवन्! यह घटना सुन लें।
जिस पर से प्रश्न करूंगा मैं, उसको मन में कृपया गुन लें।२०८
कोसल का उत्सुक राजपुत्र जो 'हिरण्यनाभ' नाम वाला-
उसने आ मुझसे एक बार यह प्रश्न एकदम कर डाला।२०९।
'हे भारद्वाज! कहो क्या तुम वह पुरुष जानते हो उत्तम-
जो सोलह कलावान् पावन, जानने योग्य है विभु अनुपम।२१०।
मैंने उत्तर में कहा कि 'मुझको उसका है कुछ पता नहीं।
हे राजकुमार! विदित होता तो देता मैं क्यों बता नहीं।।२११।।
मैं नहीं असत्य बोल सकता उसके दुष्फल का ज्ञान मुझे।
पुत्रादि सहित होता विनष्ट जो सत्य तजे, यह भान मुझे २१२।

[सत्य महिला (प्रमाण भाग) गद्यमयी]

१. "सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतः।" (ऋग्वेद, ७।८।१२।२) अर्थात् वह सत्य कथन मुझे सब बुराइयों से बचावे। (स्वामी वेदानन्दजी कृत 'श्रुति सूक्ति शती' से उद्धृत) *२. "सत्येनोत्तभिता भूमिः" (अथर्ववेद, कांड १४ व १ मं. १) अर्थात् सत्य जो त्रैकालयबाध, जिसका नाश कभी नहीं होता उस परमेश्वर ने भूमि, आदित्य और सब लोकों को धारण किया है। (सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम, समुल्लास से उद्धृत) ३. "सत्येन

---

* हमने इस 'शती' का पद्यानुवाद 'श्रुति सूक्ति संगीता' नाम से कर दिया है। उसमें यथास्थान इस सूक्ति की पद्यपरिणति निरखी-परखी जा सकती है। ("ओ. प्रे.")

लभ्यस्त पसाह्येष आत्मा ।" (मुण्डकोपनिषद्, ३।१।५) अर्थात् जो सत्याचरण रूप धर्म का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं तपःशीलों द्वारा सबका आत्मा, परमात्मा, जाना जा सकता है । ४. "नहि सत्यात् परोधर्मः" (मनुस्मृति) अर्थात् सत्य से उत्तम कोई धर्म नहीं है । ५. "सत्यमेव जयते नानृतम् सत्येन पन्था विततो देवयान:। येना कमन्त्यृषयो ह्याप्त कामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ।" (मुण्डकोपनिषद्, ३।१।६) अर्थात् जो सत्य का आचरण करने वाला है वही मनुष्य सदा विजय और सुख को प्राप्त होता है और जो मिथ्या आचरण अर्थात झूठे कामों का करने वाला है, वह सदा पराजय और दुःख ही को प्राप्त होता है । विद्वानों का जो मार्ग है सो भी सत्य के आचरण से ही खुल जाता है । जिस मार्ग से आप्तकाम, धर्मात्मा विद्वान लोग चलकर सत्य सुख को प्राप्त होते हैं जहाँ ब्रह्म ही का सत्य स्वरूप सुख सदा प्रकाशित होता है । सत्य से ही उस सुख को वे प्राप्त होते हैं, असत्य से कभी नहीं । इससे सत्य धर्म का आचरण और असत्य का त्याग करना सब मनुष्यों को उचित है । (महर्षि दयानंद सरस्वती कृत 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के वेदोक्त धर्म विषय वाले प्रकरण में से उद्धृत)

[इस अन्तिम (पंचम) प्रमाण की पद्यपरिणति]

प्रियछंद:—

सत्य की सदा जय होती है बिल्कुल भी अनृत नहीं फलता ।
आप्तों या देवों का दल तो नित्य सत्य मार्ग पर ही चलता ।२१३
है परम सत्य का जो निधान बस उसी ओ३म् का ध्यान धरें ।
शुचि वैदिकविधि से जियें, विश्वमें, वे ही जीवन सफल करें २१४

[कथा—क्रम]:-

आगे यों बोले "भारद्वाज, उन पिप्पलाद मुनिपुंगव से-

(जिनमें थे मानो कोष भरे विद्या के, व्रत के, गौरव के)" ।२१५।
यह सुनकर रथारूढ़ होकर चुपचाप वहां से चला गया।
अब प्रश्न आपसे वही करूँ जो तब था मुझसे किया गया ।२१६।
'वह पुरुष कौनसा और कहाँ, जिसकी हैं सोलह कला प्रभो।
क्या हैं, कैसी हैं वे सोलह, यह भी बताइये पूज्य गुरो ॥ २१७ ॥

२. "तस्मैस हो वाच- इहैवान्तः शरीरे सोम्य ! सःपुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीत्ति। स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपा मंत्राः कर्मलोका लोकेषुनामच ॥" (भावार्थ) महर्षि पिप्पलाद ने उत्तर दिया कि हे वत्स ! इसी शरीर में व्याप्त यह पुरुष है जिसमें ये सोलह कलाएँ प्रकट होती हैं। (यहां 'पुरुष' पद से जीवात्मा, परमात्मा दोनों लेने चाहिये।)

पद्यः—

तब ऋषिवर पिप्पलाद बोले-'हेसोम्य ! 'पुरुष' में ही परखो।
(आत्मा में औ' परमात्मा में सोलह कलाओं को निरखो) ।२१८।
है जीव, स्वयं जिसके तन-ता, ऐसा वह 'परमपुरुष' जानो।
यह देही भी तो पुरुष कि जिसको देह व्याप्ति में पहचानो ।२१९।
उस परमदेव ने ईक्षण से अथवा निज नित्य सदिच्छा से।
रच दिये प्राण, जो बने प्रेरणास्रोत सहज ही श्रद्धा के ।२२०।
हां, कारणभूत प्राण से फिर विभु ने श्रद्धा को विकसाया।
'श्रत्'है पर्याय 'सत्य' का ही 'धा' उसका धारण कहलाया ।२२१।

सत्य विषयक आप्त वचन (प्रमाण भाग)

गद्यः—

१. "सत्यमेवेश्वरो लोके सत्येधर्माः सदाश्रितः। सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परम्पदम् ॥" (वाल्मीकि-रामायण,

अयोध्याकांड, सर्ग १०९, श्लोक १३) इस श्लोक का अर्थः- 'जगत में सत्य ही ईश्वर है और सत्य के आश्रित ही सदा धर्म रहता है। सब पदार्थ भी सत्यमूलक ही हैं तथा सत्य से भिन्न कोई परम पद भी नहीं है' [भाव यह है कि ईश्वर तदाश्रित धर्म और प्रकृति तथा मोक्ष, ये सब सत्य रूप हैं। इसलिये सत्य को ही सर्वदा ग्रहण करना चाहिये। (ब्रह्मचारी नित्यानंद जी कृत पुरुषार्थ प्रकाश से)]'।

२. "वरं कूपशताद् वापी, वरं वापी शतात् क्रतुः वरंक्रतु शतात् पुत्रः सत्यं पुत्र शताद्वरम् ॥" [सौ कुवों से एक बावड़ी अच्छी, सौ बावड़ियों से एक यज्ञ अच्छा, सो यज्ञों से एक पुत्र अच्छा, परन्तु सौ पुत्रों भी से सत्य अच्छा होता है।] 'अश्वमेध सहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम्। अश्वमेध सहस्रादि सत्यमेव विशिष्यते ॥" [तराजू के एक पलड़े में १००० अश्वमेधों को और को और दूसरे में सत्य को रखकर तोलें तो सत्य, हजार अश्व मेधों से भारी ही निकलेगा।] "सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगा-हनम्। सत्यं च वचनं राजन्! समं स्यात् न वा समम्।"] [समस्त वेदों का अध्ययन और सभी तीर्थों का अवगाहन *एक सत्यवचन के बराबर है या शायद उसके भी बराबर नहीं है यानी सत्य वचन उससे बढ़कर ही है।] 'नास्ति सत्यसमोधर्मो न सत्याद् विद्यते परम्। नहि तीव्रतरं किंचित् अनृतादिह विद्यते ॥" [सत्य तुल्य कोई धर्म नहीं, सत्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं, वैसे ही इहिलोक में अनृत (वा असत्य) से तीव्रतर कुछ भी कहीं विद्यमान नहीं है] "राजन्! सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समधः परः।

---

*हम इसे यो समझते हैं कि 'सभी तीर्थ स्वरूप महामानवो का सत्संगपूर्वक अवगाहन अर्थात् थाह लेना।' ("ओ. प्रे.")

मा त्याक्षीः समर्थं राजन् सत्यं संगतमस्तु ते ॥" [हे राजन् (हे राजमान् राजे श्री प्रतापी मानव !) सत्य ही तो परं ब्रह्म है। सत्य मानो शुभ घड़ी है सो कदापि इस शुभ घड़ी अर्थात् सत्य को मत छोड़ो। सत्य सदैव तुम्हारा सँगाती रहे (जीवन में प्रतिपल तुम्हें साथी के रूप में सहयोग देता रहे।) [महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान से उद्धृत; हिन्दी अर्थ हमने ही किये हैं। ("ओ. प्रे.")]

पद्यः—

तदनन्तर 'खम्' को रचा, वायु को और ज्योति को रच डाला।
फिर 'आपः' अथवा जल विरचे, पृथिवी का बनादिया गोला।२२२।
इन्द्रियाँ बनाई, मन विरचा, फिर अन्न और बल उपजाये।
तप अथवा ज्ञान रचा जिसके उपरांत मंत्र भी प्रकटाये।२२३।
मन्त्रों या श्रुतियों को रचकर तब कर्म और लोक रचे।
लोकों में नाम बनाये जो अति मोहक थे इसलिये रुचे।२२४।

कथा संगति, गद्यमयीः—

महर्षि पिप्पलाद ने इसी प्रसंग में परमप्रमाण स्वरूपा भगवती श्रुति अथवा कल्याणी वेदवाणी का भी उल्लेख किया और यजुर्वेद के अष्टम अध्याय के छत्तीसवें मंत्र का* उपदेश दिया जो इस प्रकार है:—

---

*यह कथाप्रणेता की अर्थात् हमारी ही सुपावनी सदाचारवती संकल्पनामात्र है। (आधार)—महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने स्व-रचित 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' का के 'वेद विषय विचार' प्रकरण में इस मंत्र ("यस्मान्न जातः परो०" प्रतीकयुक्त) का अर्थ सहित उल्लेख करके भाषार्थ में इतना विशेष लिखा है कि 'इन षोडश कलाओं का प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद् के प्रश्न ६ में लिखा है। बस इसी पर से हमने यह मंत्र गह लिया है ("ओ. प्रे.")

वेदमन्त्रः—

"ओ३म् यस्मान्नजातः परोऽन्यो ऽस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजयासंरराण स्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥" (महर्षि दयानन्द कृत 'आर्याभिविनय', द्वितीय प्रकाश, मंत्र १४)

[गायन (एकाकी गाने योग्य)]❀

ज्येष्ठ या श्रेष्ठ कोई न उससे कहीं,
तुल्य भी तीन कालों में कोई नहीं।
वह विलक्षण कहाता है परमात्मा,
सर्व भुवनों को आवेश मिलता वहीं ॥१॥
सब प्रजा को रमाकर उन्हीं में रमे।
कीर्तियाँ वेद ने सत्य ही ये कहीं ॥२॥
दिव्य सोलह कला का जनक है वही-
ज्योति की तीन धारा उसी से बहीं ॥३॥
रवि, अनल, वायु, तीनों महाज्योति हैं।
किन्तु प्रभु से प्रभाएं सभी ने गहीं ॥४॥
नभ (१) अनल (२) भू (३) अनिल (४) प्राण
(५) तप (६) और जल (७) अन्न (८) विक्रम
तथा मन (१०), पनपते यहीं ॥५॥

❀वस्तुतः यह गायन, ओ३म् प्रेमी रचित 'यजुर्विनयगीतिका में से उद्धृत है। वहाँ इसी मंत्र के गेय गद्यानुवाद के रूप मे यह स्थित है वैसे हमने पूरे ही आर्याभिविनय को पद्यानुदित किया हुआ है। प्रथम प्रकाश को 'ऋग्विनय गीतिका' तथा द्वितीय प्रकाश को 'यजुर्विनय-गीतिका' नाम दिया है। अस्तु। (ओ. प्रे.")

मन्त्र (११), ईक्षण (१२) तथा लोक में नाम (१३) भी
इन्द्रियाँ (१४) और श्रद्धा (१५) उसी से हुई ॥६॥
कर्म के लोक (१६) से पूर्ण गणना बने।
विश्व गतियां सदा से इन्हीं में रहीं ॥७॥
षोडशी देव सोलह कलावान् है,
ये कलायें जगत् को चलाती रहीं ॥८॥
ईश में तो कला का नहीं अन्त है।
किन्तु इतनी जगत् में प्रकट हो रहीं ॥९॥
तज उसे, अन्य का जो उपासन करें।
वे कभी सौख्य को प्राप्त होते नहीं ॥१०॥
सर्वदा सर्वथा दुःख में वे रहें।
क्लान्तियाँ ही निरन्तर उन्होंने सहीं ॥११॥
भक्ति की शक्तिशाली सुरंगें लगा
भुक्ति की भित्तियाँ साधकों ने ढहीं ॥१२॥

सूचना:—इस मन्त्र के शब्दार्थ, व्याख्यान एवं भावार्थादि के लिये महर्षि दयानंद कृत 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, 'आर्याभिविनय' तथा 'यजुर्वेदभाष्य' ही यथास्थान देखने का कष्ट करें विस्तार भय से गद्य में अर्थ यहाँ नहीं दिया गया है, पद्यानुवाद मात्र उद्धृत किया गया है। ("ओ. प्रे.")

३. पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति,
तदेष श्लोकः—'अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद, यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति' ॥"

भावार्थः

वही परमदेव परमात्मा कलारहित और अमृत है उसी पर यह श्लोक कहा है। जिसका आशय यह है कि 'रथ की नाभि में जैसे अरे लगे रहते हैं वैसे ही उस ब्रह्म में सारी कलाएं

ठहरी हुई हैं। उसी जानने योग्य परमपुरुष (सत्यनारायण ओ३म् भगवान्) को तुम जानो जिससे तुमको मृत्यु परि व्यथा न दे अर्थात् प्रपीड़ित न करे।

पद्य:—

दोहे:— हैं ये ही सोलह कला, जिनमें सब संसार।
सत्यदेव श्री ओ३म् से इन सबका विस्तार ॥५५॥
इनका बड़ा रहस्य है, अनुभव से हो ज्ञात।
कौन शब्द में कह सके वह अलबेली बात ॥५६॥
उसमें है सोलह कला पर निष्कल भगवान् (!)
(यह विचित्रता ही उसे रखती विरल, महान् ॥५७॥
जिन-जिन मनुजों में प्रकट होतीं कला समस्त।
उन उनका जीवन बने अनुकरणीय प्रशस्त ।५८॥
नारी-नर का भेद कुछ रहे न आप्तों मध्य।
महा मनुज बन बींधते हैं सर्वोत्तम लक्ष्य ॥५९॥
वे षोडशकल आप्त भी, करते विभु का ध्यान।
उस निष्कल भगवान् को ध्याते हैं गह ज्ञान।६०।
पहले तो सोलह कला, समझो भले प्रकार।
फिर उनको धारण करो तब होगा उद्धार ॥६१॥
ओ३म् परम ज्ञातव्य है सत्यदेव परमेश।
उसे जानकर मृत्यु का रहे न भय लवलेश ॥६२॥

४. तान्हो वाचैताव देवाहमेतत् परं ब्रह्म वेद, नातः परमस्तीति ॥"

भावार्थः—

महर्षि पिप्पलाद अन्त में बोले कि "मैं तो उस परं ब्रह्म को इतना ही जानता हूँ। सचमुच इससे आगे जानने योग्य कुछ है भी नहीं, (केवल अनुभूतिगम्य है।)

प्रिय छन्दः —

ऋषिवर यह सब कहकर बोले– 'मैं तो बस इतना ही जानूँ।
अनुभूतिगम्य ही आगे सब, ऐसा भी निश्चय से मानूं ।२२५।
तुम छहों मनीषि सुनो समझो, यह ब्रह्मज्ञान है गहन बड़ा।
पर इसे जानकर मिट जाता अज्ञान भ्रमों का सब झगड़ा" ।२२६।

५. "ते तमर्चयन्तस्त्वंहि नः पितायोऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥ " (भावार्थ) वे छहों विनीत शिष्यगण (सुकेशा भारद्वाज कबंधीकात्यायन आदि) उन महर्षि पिप्पलाद की यथोचित अर्चना करते हुए बोले कि 'आप ही हमारे पिता हैं' ❋ आपने ही हमें अविद्या के परले पार उतारा है। परम-ऋषियों को नमस्कार हो, परमऋषियों को नमस्कार हो।

पद्य: —

तब तो कृतार्थ होकर सबने ऋषि का अर्चन सत्कार किया।
वेदोक्त विधानों से उनको अभिवादन बारम्बार किया। २२७।
फिर कहा 'आप ही दिव्यज्ञान के दाता, पिता हमारे हैं।
कर कृपा, आपने हमें भ्रान्तिसागर से पार उतारे हैं ॥२२८।
ऋषिराज ! आपकी सेवा में हम नमो 'निवेदन करते हैं।
जो गुरुजन रहे आपके भी, उनको अभिवादन करते हैं' । ।२२९।
अर्चना परम ऋषियों की, यों उन छः मनीषियों ने करली
ऋषि पिप्पलाद को वन्दन कर, सबको श्रद्धा अर्पित कर दी ।।२३०।

❋ 'जनिता चोपनीता च यस्तु विद्या प्रयच्छति । अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥ " यह मनुस्मृति या अन्य किसी आर्ष स्मृति का श्लोक है। इसे हमने तो अपने बाल्यकाल में पूज्य पिता श्री (स्वामी सूर्यानन्दजी सरस्वती) के मुखार विन्द से सुना था, तभी से याद है। ("ओ. प्रे.")

[कथा संगति] उपसंहार (गद्यमय)

इस प्रकार से उन सबने सन्तुष्ट होकर प्रस्थान किया और गमन-समय प्रेम पूर्वक महर्षि पिप्पलाद के सान्निध्य में प्रभु परमेश्वर ओंकारनाथ निराकार सत्यनारायण भगवान से वेद के शब्दों में यह याचना कीः—

वेदमन्त्रः—

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयान्ताम् पावमानी द्विजानाम्। आयुःप्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥" (अथर्ववेद)

(संक्षिप्त भावार्थ) वेदमाता जगदम्बा परमचिति की हमने स्तुति की है वह सत्यनारायण प्रभु हमें आयु, प्राणशक्ति, उत्तम सन्तानें, श्रेष्ठ पशु, यश, धन एवं ब्रह्मतेज देकर ब्रह्मलोक (परंधाम या मोक्ष) प्राप्त करावे।

[इस वेदमन्त्र के पश्चात् उन्होंने निम्नलिखित श्लोक भी बोलाः—श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञा विद्यां पुष्टिं श्रियम् बलम्। तेजमायुष्यमारोग्यं देहि में हव्यवाहने॥"

❀ (संक्षिप्त भावार्थ) हे सारे हव्य द्रव्यों को ग्रहण करने वाले! हे अग्नि संज्ञक भगवन्! हमें श्रद्धा (अर्थात् श्रत्=सत्य और धा=धारण ❀ कराने वाली उत्तम भावना), मेधा, कीर्त्ति,

---

❀ हमारी निर्मिता पद्य रचना "श्रद्धा कल्याणमयी वरदा" इस बारे में अवश्य देखें। ('ओ प्रे.")

❀यह श्लोक भी हमने पूज्य पिताश्री से ही सुना था। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे स्मरण रखने में त्रुटि रह गई है। किन्हीं संस्कृतज्ञ महानुभाव से पूछकर सुधार लें, हम प्रमादवशात् ऐसा नहीं कर पायें हैं, अस्तु! ("ओ. प्रे.")

प्रज्ञा, विद्या पुष्टि, लक्ष्मी, शक्ति, तेजस्विता दीर्घायु एवम् नैरोग्य प्रदान करो, यही विनय है। [कथाक्रम (गद्यमय)] तदनन्तर गाते गाते वहाँ से प्रयाण किया, वह गायन इस प्रकार था:-

गायन:—

परम पुनीत सत्यनारायण सबका सदा करें कल्याण।
दुष्ट भाव सब नष्ट करादें, कष्टों से कर दें परित्राण॥
सत्य रूप, चैतन्यरूप, आनन्द रूप हैं श्री भगवान्।
निराकार वे ओ३म् देव ही सबसे अणु भी और महान् ॥१॥
सत हैं, चित् हैं, सर्व जीव पर अपनी इन्हें कहाँ पहचान?
जान सकें जो पहले निज को उन्हें ईश देते सम्मान ॥२॥
केवल सत्स्वरूपिणी माया, निरानन्दिनी है बेजान।
जो उसकी उपासना करते उनका मिटे नहीं अज्ञान ॥३॥
वैदिक विधि से पूजन करके जो जो लगा सकेंगे ध्यान।
उन्हें आप्त नारी-नर सम ही विभुवर देंगे गौरव-मान ॥४॥
श्रम श्रद्धामय साधक पर ही कृपा दिखाते दया निधान।
कर्म और भोगों का रक्खा बड़ा विलक्षण विरल विधान ॥५॥
श्रुति भगवती सिखाती है कैसे वरेण्य का हो गुण गान।
जीवन पर कैसे ताने हम शाश्वत सुख का विमल वितान ॥६॥
गूंज उठे जब सब गति मति में ओ३म् २ की मोहक तान।
ऊग सके तब सात्विकता का भक्त उरों में नवल विहान ॥७॥

समर्पण-वचन सबसे टुकड़ों में बुलवाया जावे।

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपया अनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थ काम मोक्षाणाँ सद्यः सिद्धिः भवेन्नः।

[हे ईश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जो जो उत्तम काम हम लोग करते हैं वे सब आपको अर्पण हैं जिससे हम लोग आपको प्राप्त होकर धर्म, जो सत्य न्याय का आचरण करना है,

अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनंद में रहना है इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो। (महर्षि दयानंद कृत 'पंच महायज्ञ विधि' के ब्रह्मयज्ञ प्रकरण में से उद्धृत)] [कथाक्रम (गद्य) यों गाते गाते प्रयाण करके निज-निज स्थानों पर पहुँचे और वहाँ सत्यनारायण ओ३म् देव की यथाविधि उपासना से कल्याण लाभ किया। इति]

श्लोकः—

(१) "विमलं सुखदं सततं सुहितं, जगति प्रततं तदुवेदगतम्। मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी स नरोऽस्ति सदेश्वर भागधिकः॥" ['जो ब्रह्म विमल सुखकारक, पूर्णकाम, तृप्त जगत में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है। जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता अर्थात् यथार्थ विज्ञान है वही मनुष्य, ईश्वर के आनंद का भागी है और वही सबसे सदैव अधिक सुखी है, ऐसे मनुष्य को धन्य है।' ("आर्याभिविनय" की भूमिका, श्लोक ६)]

२. "विशेषभागीह वृणोति यो हितम् नरः परात्मानमतीव मानतः। अशेष दुःखात्तु विमुच्य विद्यया स मोक्षमाप्नोति, न कामकामुकः॥" [जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मता विद्या सत्संग, सु विचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार अर्थात् आश्रय करता है वही जन अतीव भाग्यशाली है क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्य विद्या द्वारा सम्पूर्ण दुःखों से छूटकर परमानंद परमात्मा की प्राप्ति रूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है और दुःख सागर से छूट जाता है परन्तु जो विषय लम्पट, विचार रहित, विद्याधर्म

जितेन्द्रियता सत्संग रहित, छल कपट अभिमान दुराग्रहादि दुष्टता युक्त है सो वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह ईश्वर भक्ति से विमुख है । (उक्त 'भूमिका' श्लोक ७)]

नोट—महर्षि ने जहाँ-जहाँ नर या जन लिखा है वहाँ वहाँ भी हम तो मनुष्य ही मानते हैं ताकि नारियाँ भी शामिल रहें । ("ओ. प्रे.'

आख्यान समाप्तिः—(प्रियछंद क्र. २३१)

धर ध्यान सत्यनारायण का उर की आँखें मुदमय खोलें ।
पंचम आख्यान समाप्त हुआ, सब ओ३म् देव की जय बोलें ॥

[इति पंचमाख्यानः]

श्री सत्यनारायण ओ३म् भगवान के लिये जयगान

(तर्ज —'जय जगदीश हरे')

ओ३म् जय-जय सत्य प्रभो ।
सब सुजनों के संकट हरते नित्य विभो, ओ३म् जय-जय ०
निर्विकार अज निराकार तुम जग भर के स्वामी, शिव जग भर के स्वामी ।
अनुपम अमर निरंजन, तुम अन्तर्यामी ॥१॥ ओ३म् जय जय ०
माता पिता विधाता भ्राता तुम ही परित्राता, शिव, तुम ही ०
तुमको जो प्रिय बनता चारों फल पाता । २॥ ओ३म् ०
तुम आनन्द स्वरूप दयाधन, जीवन धन मेरे, शिव जीवन०
भक्ति भाव से तुमको मम तन मन टेरे ॥३॥ ओ३म्०
सत्य विचारूँ हे नारायण सच ही उच्चारूं, शिव सच ही ०
सत्य आचरण कर लूँ उत्तमता धारूँ ॥४। ओ३म् ०
श्रम श्रद्धा की तुमको मैंने छोटी भेंट धरी, शिव छोटी ०
यथा शक्ति है इसमें प्रीति प्रतीति भरी ॥५॥ ओ३म्०

मुझ पर कृपा दिखाओ सन्मति का वर दो, शिव, सन्मति ०
हे तेजोमय भगवन् ! दिव्य ज्योति भर दो ॥ओ३म् ०

[इति श्री उपनिषदीय सत्यनारायण तत्व कथा समाप्ता]

शान्ति पाठ वेदमन्त्रः—

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति रोषधयः शान्तिः वनस्पतयः। शान्तिर्विश्वे देवा शान्ति ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरे व शान्तिः सामा शान्तिरेधि। ओ३म् शान्तिश्शान्तिः ३शान्ति॥ [इसका हमारा कृत पद्यानुवाद गेय है, कृपया 'प्रवचन यज्ञगायन' वाली पुस्तिका में देखें।
("ओ. प्रे.") (पद्यमयी शुभाशंषा)

सच्चे वक्ता सच्चे श्रोता, दोनों का होवे कल्याण। सब सुना सुनाया सफल कीजिये ओ३म् देव प्राणों के प्राण॥

जयघोषः—

प्रथमाख्यान की इति पर लिखितानुसार ओ३म् शान्त तुष्टि पुष्टिरस्तु) [तत्वकथा सम्पूर्ण हुई] शमित्योम् ॥

०: :०

॥ ओ३म् ॥

कवि "ओ३म्प्रेमी" (शाजापुरी) के

पद्यात्मक साहित्य की सूची

(अति संक्षिप्त विवरण सहित)

[पिछले ३६ वर्षों में जितना पद्यात्मक साहित्य, कवि ओ३म् प्रेमी' (पूर्व का उपनाम 'पीड़ित') ने लिखा है उसे तीन वर्गों में रखा जा सकता है — मौलिक अर्द्धमौलिक तथा पद्यानुवाद। इसी क्रम से यहाँ उनके पद्य-साहित्य की सक्षिप्त विवरणयुक्ता सुची प्रस्तुत है।

मौलिक रचनाएं:—

(१) "श्रद्धा कल्याणमयी वरदा" (९३२ प्रियछंदों वाली रचना जिसमें श्रद्धा के प्रायः सारे ही पहलुओं पर स्वतन्त्र-चिन्तन है। एक विद्वान समालाचक का अभिमत है कि 'श्रद्धा पर विस्तार-पूर्वक विवेचनायुक्त रचना लिखकर रचयिता स्वयं श्रद्धेय हो गये हैं।')

(२) "माण्डवी" [रामानुज भरतजी की यशस्विनी पत्नी का सर्वथा अनूठा पद्यमय चरित्र चित्रण; इस वृहद्काव्य में २९२९ प्रियछंद एवं ३५९ दोहे हैं। पद्योपन्यास रूप में रचित इस आध्यात्मिकता प्रधान काव्य के २५ प्रकरण हैं जो लगातार २५ दिनों में ही सहसा निर्मित हुए हैं' एक प्रकरण में चमत्कार पूर्ण ढंग से महाकवि "नवीनजी" तथा उनके "उर्म्मिला" महाकाव्य का भी उल्लेख हुआ है। बीसियों वेदमन्त्रों के प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष भाव तथा अनेकों आप्तोक्तियों का यथास्थान सुप्रयोग भी इसकी विशेषता है। म. भा. हिन्दी साहित्य समिति की मुख पत्रिका "वीणा" (मासिक) के 'ग्राम संस्कृति परिशिष्टांक' में अर्थात् मई-

जून १९७१ ई० वाले अंक में 'माण्डवी' का सविस्तार परिचय प्रकाशित हो चुका है—अस्तु। इसकी भूमिका सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान पूज्यपाद श्री अमर स्वामी परिव्राजकजी महाराज, संन्यास आश्रम, गाजियाबाद उ. प्र.) ने लिखने की कृपा की है।]

(३) "काव्याञ्जलि" (श्रद्धेय "नवीनजी" के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि के रूप में ९ कविताओं की पुस्तिका। इसका उल्लेख डॉ लक्ष्मीनारायणजी दुबे (सागर वि. वि.) ने अपने 'नवीन' जी विषयक शोध-प्रबन्ध में अनेक स्थलों पर किया है।) यह प्रकाशित हो चुकी है।

(४) "वेदोपनिषदादि प्रवचन यज्ञ" के गायन—(इसमें चारों वेदों के चुने हुए मन्त्रों का स्वतन्त्र-पद्यानुवाद एवं अन्य भी कुछेक आध्यात्मिक, गेय पद्य हैं। इसका प्रकाशन हो चुका है।)

(५) "देवी जीवन दिव्या" (कल्पना प्रसूता छः सर्गों वाली उपन्यास जैसी पद्यमयी रचना जिसमें आंचलिकता को उभार मिला है तथा स्वयं कवि के वंश का भी यत्किंचित् उल्लेख हुआ है। कवि की कुलदेवी का नाम 'जीवन-दिव्या' ही है—अस्तु।)

(६) "सुत्यागी तपस्वी तृतीया श्रमी" [एक वेदमन्त्र के आधार पर निर्मित पद्योपन्यास, बहुत ही छोटे-से छन्द में। केवल ११५ छन्दों के द्वारा तृतीया श्रमी का मौलिक चित्रण किया है। स्वयं कवि ने इसे 'मेरा (कदाचित्) अन्तिम काव्योपन्यास' कहा है।]

(७) "गृहिणी-गौरव-गाथा" (सिर्फ ३७ प्रियछंदों वाली अकस्मात् लिखी हुई डेढ़ घंटे मात्र में निर्मिता गृहिणी-गौरव-प्रस्थापिनी पद्यरचना)

(८) "कर्मयोग का पाठ पढ़ाया" (सत्य घटना पर आधारित व्यक्तिगत, मौलिक, अद्भुत लघुकाय सत्यकाव्य जो ३ घंटे में आशुरुपेण बना है।)

(९) "स्वतन्त्रता-परतन्त्रता न हो, अपितु पर परतन्त्रता रहे" (पद्यमय प्रविचार वाली यह आशु रचना पौने दो घंटे में रची गई है, नाम लम्बा होते हुए भी इसमें केवल ६१ प्रियछंद हैं।)

(१०) "जयप्रकाश द्वारा प्रकाशजय" (खण्ड काव्य) [कवि के ज्येष्ठ पुत्र जयप्रकाश आर्य 'जयन्त' का अकस्मात् निधन हो जाने पर उसके तेरहवें दिन आशुरुपेण कुछ घंटों में यह शोक-पूर्ण काव्य निर्मित हुआ जिसमें स्वर्गीय जयप्रकाश के मृत्यु-दृश्य की महर्षि दयानंद के मरण-दृश्य से अनूठी तुलना हो पाई है।]

(११) "उपेक्षिता उमाकुमारी" (लगभग ६॥ घण्टे में निर्मिता आशु-पद्यरचना) इसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती की जिस कन्या से सगाई हुई थी उसका बड़े अनूठे ढ़ंग से चरित्र-चित्रण किया गया है। 'सार्वदेशिक' (हिन्दी साप्ताहिक, देहली) में क्रमशः प्रकाशित' 'महर्षि की अज्ञात जीवनी' से भी पर्याप्त साहाय्य गहा गया है अस्तु।) यह उपन्यासोपम है।

(१२) "धात्री माता रत्ना" (कल्पना परिपुष्टा सत्यकथा, इसकी रचना आकस्मिक रूपेण केवल ४।। घंटों में हुई है।) महर्षि दयानन्द की धात्री का पद्यमय वर्णन इसमें हैं जिसका आधार उक्त 'सार्वदेशिक' (साप्ताहिक) में प्रकाशित एक प्रामाणिक लेख है जो 'महर्षि की अज्ञात जीवनी' शीर्षक से क्रमशः छपता रहा था।

(१३) "भूल के शूल यों धूल में दो मिला" (केवल १ घण्टे में निर्मित दार्शनिक सत्यकाव्य जो आत्म चिन्तन पर निर्भर है, इसमें २० छोटे-छोटे से छन्द मात्र हैं तथापि अति महत्वपूर्ण।)

(१४) "व्यक्तिगत व्यनुभूति मेरी" (सवा घण्टे में निर्मिता आशु रचना केवल २७ छंदों वाली)

(१५) "बनें चेतन 'ओश्म् प्रेमी' इसी तरह" (दो घण्टे मात्र में बनी हुई ३४ छोटे छोटे से छन्दों वाली पद्य रचना, इसके

निर्माण में कवि की आर्या भार्या सौ इन्दिरा देवीजी का भी सहयोग रहा जिसका उल्लेख स्वयं काव्य में है।)

(१६) "साधना की बाधना कैसे हटे? "(मौलिक आकस्मिक अद्भुत चिन्तानात्मक सत्यकाव्य जो प्रायः १० घंटे में रचा गया इसमें १११ छंद हैं वस्तुतः आध्यात्मिक साधना ही वर्णित है।)

अर्द्ध-मौलिकः—

नोटः—'ओ३म् प्रेमी-स्मृति' तथा अन्य अनेकों गद्यात्मक प्रणयनों को यहाँ जान बूझकर छोड़ दिया गया है यद्यपि वे सभी मौलिक हैं।]

(१७) "उपनिषदीय सत्यनारायण तत्त्वकथा" [छान्दोग्योपनिषद् में ४ से ५ तथा प्रश्नोपनिषद् में से १ इस प्रकार ५ आख्यानों के आधार पर नये ढ़ंग से रची हुई पद्यमयी कथा जिसमें स्थान स्थान पर वेद मन्त्रों के पद्यानुवाद एवं अन्य आध्यात्मिक गेय पद्य भी रखे गये हैं। इसके भूमि लेखक हैं श्री डा. चिन्तामणि उपाध्याय (उज्जैन) यह प्रकाशित हो चुकी है, मुद्रण व्यय, नेपाल निवासी श्री गुरुंग महोदय द्वारा इस रचना से प्रभावित होकर स्वयमेव समर्पित (आफर) किया गया, इसी से इसकी विशेषता विदित हो सकती है।]

(१८) 'रैक्वपर्णा की रानी" (अथवा 'स्वयम्वरा-ज्ञानवती" उपनिषद्काल की घटना पर समाधारित, अधिकांशतः मौलिक, अन्तःप्रेरणाजनित सत्काव्य; इस आध्यात्मिक पद्योपन्यास में ११८३ प्रियछन्द (१६ सर्ग हैं। परिशिष्ट में 'उपनिषदीय सत्य-नारायण तत्त्वकथा' का तीसरा आख्यान भी, सम्बद्ध होने के कारण, दे दिया गया है।

(१९) "पाषाणी से पुनः मानुषी" (केवल तीन दिनों में लगातार कई घंटों तक यह रची जाती रहकर पूरी हुई है) इस पद्योपन्यास में अहल्योद्धार को नये बल्कि अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह काव्यमयी कथा किन्हीं श्री. 'प्रेमी' की एक कहानी पर आधारित।

(२०) "श्रेयस्करी सूक्ति संगीता" (भारतीय एवं विदेशीय विशिष्ट विचारकों तथा सद्ग्रन्थों में से चुनी हुई चौदह सौ सूक्तियों को स्वतन्त्ररूपेण की हुई पद्यपरिणति, ये सूक्तियाँ लगभग १७५ विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में हैं और इनमें अधिकांशतः (८० प्रतिशत से भी अधिक) विदेशियों की हैं। कवि ने अपना अभिमत भी यत्रतत्र सर्वत्र पद्यरूप में दिया है और अन्त में स्वयं की कतिपय विशिष्ट कविताएँ भी रख दी हैं।

अर्द्ध मौलिकः—

(२१) "क्रान्तिज्वाल" (अनेकों विचारकों के क्रान्ति विषयक विचारों पर से कवि ने जो निश्चय किया है उसकी ओजस्विनी पद्यमय झाँकी इसमें मिलती है, वैसे यह कवि के प्रारम्भिक काव्य काल की रचना है-अस्तु।)

(२२) "रणबाँकुरी" [दिल्ली में मुस्लिम आक्रमणकारी से डटकर लोहा लेने वाली एक हिन्दु नारी की सत्य घटना पर आधारित पद्यमय वर्णन जिसका आधार 'वीर अर्जुन' (साप्ताहिक) के एक प्रामाणिक लेख को बनाया गया है।]

पद्यानुवादः—

(२३) "श्रुति-सूक्ति संगीता" (एक सौ आठ वेद वचनों की हिन्दी पद्य परिणति) वेद वाक्यों तथा उनके गद्यमय अर्थों के लिए स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ की 'श्रुति सूक्ति' से भरपूर सहायता ली गई है।

(२४) "शतपथ-सूक्ति-सङ्गीता" (वेदमूर्ति पं. श्री पाद दामोदर सातवलेकरजी के 'शतपथ बोधामृत में से चुनी हुई १०८ सूक्तियों का उन्हीं के द्वारा किये हुए अर्थ के आधार पर हिन्दी पद्यानुवाद)

(२५) "आत्मोपनिषदीय-आर्यभाषालाप" (पं. रामदत्त शुक्ल एम. ए. एल. एल. बी. एडव्होकेट लखनऊ, अधिष्ठाता, घासी-राम प्रकाशन विभाग, आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित 'आत्मोपनिषद्' की उन्हीं के द्वारा किये हुए आर्य-भाषा गद्यार्थ को आधार बनाते हुए, पद्य परिणति) विदित हो कि यह 'आत्मोपनिषद्' वस्तुतः अथर्ववेदीय माना जाता है ।

(२६) "(सुपद्यीकृत) शारीरिकोपनिषत्" [मूलतः आर्षरचना विशिष्ट] पं. रामदत्त शुक्ल, एडव्होकेट लखनऊ द्वारा प्रकाशित शारीरिकोपनिषत्' का उन्हीं के द्वारा किये हुए हिन्दी गद्य के आधार पर पद्यानुवाद)

(२७) "पद्यमय पातञ्जल प्रवचन" अर्थात् पतंजलि महामुनि प्रणीत योगदर्शन की हिन्दी पद्यपरिणति जिसमें प्रमुखतया स्वामी ओ३मानन्द तीर्थजी के 'सांख्य योग सार' से भरपूर निर्देशन प्राप्त किया गया है ।

(२८) "विविध वेदमन्त्रानुवाद-काव्य-निनाद"—केवल ११ मंत्रों के अनुवाद परक भावमयी कविताएँ)

(२९) "ऋग् विनय-गीतिका" अर्थात् महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत आर्याभिविनय' (प्रथम प्रकाश) का यथा सम्भव अविकल हिन्दी पद्यानुवाद । यह पुस्तिका प्रकाशित हो चुकी है, मुद्रण व्यय श्री आर्यसेवकजी, मंत्री, आ० स० शाजापुर ने दिया, भूमिका लेखक पं. देवप्रकाशजी मौलवी फाज़िल, भू. पू. आचार्य, अरबी संस्कृत महाविद्यालय, अमृतसर ।

(३०) "यजुर्विनयगीतिका" अर्थात् महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के वैदिक भक्ति भावपरक अमर ग्रन्थरत्न 'आर्याभिविनय' (द्वितीय प्रकाश) का यथा सम्भव अविकल रूपेण हिन्दी पद्यानुवाद।

(३१) "महाभारत-मूलक श्रीकृष्ण-संस्मरण"– लगभग ३००० प्रिय-छन्दों एवं दोहों से युक्त इस रचना में योगिराज भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र का प्रामाणिक चरित्र चित्रण उपन्यास जैसा किया गया है, पं. आर्यमुनिजी के 'महाभारत आर्यभाष्य' से यथेष्ट साहाय्य गहा गया है।)

(३२) "हिन्दी पद्यमय वाल्मीकि-रामायण"–अर्थात् वाल्मीकि महामुनि कृत रामायण का स्वतन्त्र हिन्दी पद्यानुवाद। इसमें भी पं. आर्यमुनिजी कृत 'वाल्मीकि रामायण-आर्यभाष्य' से पर्याप्त सहायता ली गई है किन्तु कथा संगति के रूप में कवि ने अपने विचार स्थान-स्थान पर पद्य परिणत करके दिये हैं।

(३३) "ओ३म् प्रेमी शुद्धा-गीता" (३०६० प्रिय छन्दों में श्रीमद्-भगवद्गीता' के अ प्रक्षिप्त प्रामाणिक अंशों का हिन्दी पद्यानुवाद। पं. भवानीलाल भारतीय को 'शुद्ध गीता' से इसमें अत्यधिक साहाय्य लिया गया है। केवल वेदानुकूल श्लोक ही पद्यानूदित हुए हैं, अन्य नहीं।

(३४) "सामसङ्गीतिका" (१) (सामवेद के प्रथम अर्थात् पावनाग्नि पर्व का गेय पद्यमय भावानुवाद) वेदप्रिय पं. चमूपतिजी एम. ए. कृत 'जीवन ज्योति' पर आधारित इसमें समूचे पर्व के ११४ मन्त्र ही पद्यानूदित हुए हैं।

(३५) "अथर्व अमृतालाप" (कतिपय अथर्व वेदीय मन्त्रों का हिन्दी पद्यानुवाद) वेद मूर्ति पं. सातवलेकरजी कृत 'अथर्व वेद का स्वाध्याय' पर आधारित।

(३६) "साम-सोम-सङ्गीत-सुमन" (सामवेद के पावमान पर्व का हिन्दी पद्यानुवाद, वेद प्रिय पं. चमुपतिजी एम. ए कृत 'सोम-सरोवर' से यथेष्ट साहाय्य इसमें लिया गया है।)

(३७) "साम-सङ्गीतिका (२)" [सामवेद के द्वितीय अध्याय (ऐन्द्र पर्व) का हिन्दी पद्यानुवाद। इसके लिये आधार बनाया गया है पं. तुलसीराम स्वामी कृत 'सामवेदभाष्यम् को।]

(३८) "पद्यमय। पञ्चमहायज्ञ विधि" (महर्षि दयानन्द कृत 'पंचमहायज्ञ विधि' पर पूर्णतया आधारित) यह पद्य परिणति अभी पूरी नहीं हो पाई है।

(३९) 'इष्टि याग पद्धति का पद्यानुवाद' (पूज्य पिताजी श्री स्वामी सूर्यानन्दजी सरस्वती आर्य संन्यासी द्वारा श्रद्धामय श्रम पूर्वक संकलिता 'इष्टियाग पद्धति' अर्थात् दर्शपौर्णिमेष्टि के यज्ञ की विधि का स्वतंत्र हिन्दी पद्यानुवाद। यह भी अभी अपूर्ण ही है।

(४०) (चतुर्वेदानुवाद चारुपद्यमाला के अन्तर्गत

'ऋग्वेदीय-रागरङ्ग' अर्थात् महर्षि दयानन्द कृत वेदभाष्य पर आधारित हिन्दी पद्यानुवाद। इसमें ऋग्वेद के प्रारंभ से लेकर १०२६ मत्रों की ही पद्यपरिणति (१४३८४ प्रियछंदों में) की गई है, शेष कार्य स्थगित किया हुआ था, अब पुनः चालू है।

(४१) (चतुर्वेदानुवाद चारुपद्यमाला के अन्तर्गत) 'अथर्व-प्रसून गुच्छ' (अथर्ववेद के प्रारम्भ से १२४वें मन्त्र तक का हिन्दी पद्यानुवाद।) पं. क्षेमकरणदासजी त्रिवेदी (जो प्रयाग निवासी एक सक्सेना कायस्थ वैदिक विद्वान थे) के "अथर्व वेद भाष्य' पर यह पद्य नुवाद अधिकतर अवलम्बित है। १०५३ प्रियछंदों में १२४ मंत्रों का पद्यानुवाद करके सम्प्रति इसका शेष कार्य स्थगित किया हुआ है।)

(४२) चतुर्वेदानुवाद चारुपद्यमाला के अन्तर्गत) 'यजुर्पद्य कुसुम-गुच्छ' (सम्पूर्ण यजुर्वेद का हिन्दी पद्यानुवाद। महर्षि दयानन्द कृत भाष्य पर निर्भर।)

[फुटकर कविताएं (हिन्दी, उर्दू अंग्रेजी में]

(४३) 'पीड़ित प्रणयन' (भाग १) इसमें प्रारम्भ से १९४५ ई. पर्यन्त के दश वर्षों की कविताएं, गद्य काव्यादि का संग्रह है। सब मिलाकर ४४४ रचनाएं संग्रहीता हैं।

(४४) "पीड़ित प्रणयन" (भाग २)-इसमें सन् १९४५-४६ से सन् १९५४-५५ तक के दश वर्षों की कविताओं का संग्रह है जिनकी संख्या २०२ है।

(४५) "पीड़ित प्रणयन" (भाग ३)-इसमें सन् १९५५-५६ से १९६०-६१ तक की २२२ कविताएं हैं।

(४६) "अध्यात्म-आलाप-अशीतिका"-(सन् १९३६ से १९५६ तक की आत्मा-परमात्मा-विषयक ८० कविताएं)

(४७) "गेय-श्रेय-कविता-कौमुदी" (गाने योग्य आध्यात्मिक पद्य रचनाएं, संख्या ४०)

(४८) "गेय आध्यात्मिक पद्य-रचनाएं" (चुने हुए १०८ गीतों का संग्रह)

(४९) "ओ३म् प्रेमी-आलाप" (सन् १९६१ में 'पीड़ित' को बदल कर 'ओ३म्प्रेमी' उपनाम धारण करने के पश्चात् रचिता कविताएं जो संख्या में सैकड़ों हैं) [इनमें उर्दू एवं अंग्रेजी की कविताएं भी हैं]

(५०) "अन्तरुक्तियाँ" (प्रारम्भ तथा अन्त में पद्य पंक्तियाँ लिख-कर बीच में उसी विषय के आकस्मिक हृदयोद्गार अंकित करने की नई विधा से युक्त रचनाएं जिनकी संख्या लगभग २५ है।)

नोटः—कुछ वर्षों से कवि ने एक नया ही लकब अपने नाम के आगे लगाना प्रारम्भ कर दिया है जो अनेकों रचनाओं (पुस्तकों) पर भी लिखा है। लक़ब इस प्रकार है:—

"(कल्पित कबीरी विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट लेने वाले) अघोषित स्वयम्भू डॉक्टर रामनारायण माथुर 'ओ३म् प्रेमी' शाजापुरी"

—*—

छपते छपते

उक्त सूची में एक महत्वपूर्ण परिवर्द्धन हुआ है कि अभी ९-४-७२ को भीतरी प्रेरणा पर कवि श्री ओ३म्प्रेमीजी ने 'हिन्दी पद्यमय 'वैदिक ब्रह्मयज्ञ' (सन्ध्योपासन)" केवल कुछ घण्टों में रच डाला है। इसमें ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा विनियुक्त वैदिक संध्या के मन्त्रों का स्वतन्त्र पद्यानुवाद है किन्तु यथा-सम्भव ऋषिकृत सत्यार्थ का अवलम्ब लिया गया है। कवि स्वयमेव अपनी इस आशुरचना पर सविस्मय अतिहर्षित हुए हैं।

——

ओ३म्
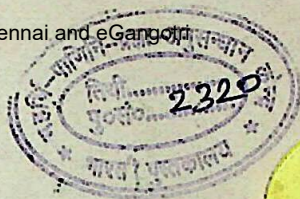
शुद्धि—पत्रक

स्थल पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रण	शुद्ध रूप
३	२०	अन्याय	अन्यान्य
४	१४	प्रकृति	प्रभृति
७	२३	यत्किचत्	यत्किचित्
१३	१७	त्मेव	त्वमेव
,,	१८	त्वमेव	त्वामेव
१५	१	न	नहीं
,,	१६	अर्थवणं	अथवंणं
१९	१७	यम	सम
२०	१८	स्मृत्	श्रुत्
२२	४	दक्षिणत्	दक्षिणत
,,	४	सर्वामिति	सर्वमिति
,,	६	लाकेषु	लोकेषु
२३	१०	उपासक	उपासना
२३	८	प्राणदायक	प्राणप्रदायक
२७	१५	सुखद	सुख
२९	१६	—	(कैसे) इस
३३	१६	वर्षाण्यनीन्	वर्षान्यन्मीन्
३५	२०	कर	कह
,,	२५	कम	कम्
३६	१४	—	(ध्यान) में
३९	२०	सं.नो	स नो
४०	१३	सदभक्त	सद्भक्त

४४	४	मनायोग	मनोयोग
४५	७	ब्रह्माचंवस्	ब्रह्मवर्चस्
४६	६	—	(में) तो
,,	७	—	(स्वेच्छा) से
४७	३	अहा	अहा
,,	१२	रघ	रथ
,,	,,	भेंट को	भेंट की
४६	२४	—	(नृपति) को
५३	१०	—	(जो) था
,,	१४	इसीलिये	इसलिये
,,	२१	ब्रह्मन	ब्रह्मन्
५५	३	सदव	सदैव
,,	१३	गोरव	गौरव
,,	१७	संस्कृति	संस्मृति
५६	५	चलत	चलता है
,,	१७	हुवामेह्	हुवामहे
५९	१८	प्रस्सतोता	प्रस्तोता
५९	२५	तुरन्त	तुरत
६४	८	माहिंसी	माहि॑ सीः
,,	१२	स्वामिन	स्वामिन्

नोटः—पृष्ठ १४ से २३ तक छन्दों के १, २, ३ आदि अंक (असावधानी के कारण) दूसरी के बजाय पहली पंक्ति के अंत में छप गये हैं कृपया उन्हें सुधार कर यथा स्थान पढ़ें। (मुद्रक)

❀ प्रकाशकः—
"ओ३म् प्रेमी"
चौधरी भवन, ल
शाजापुर

◆

❀ मुख्य विक्रेताः—
तुलसी साहित्य सदन
खजूरी बाजार, इन्दौर

◆

❀ मुद्रकः—
नरेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस,
३३, कीबे कम्पाउन्ड, इन्दौर-१

卐